सूर्यमुख

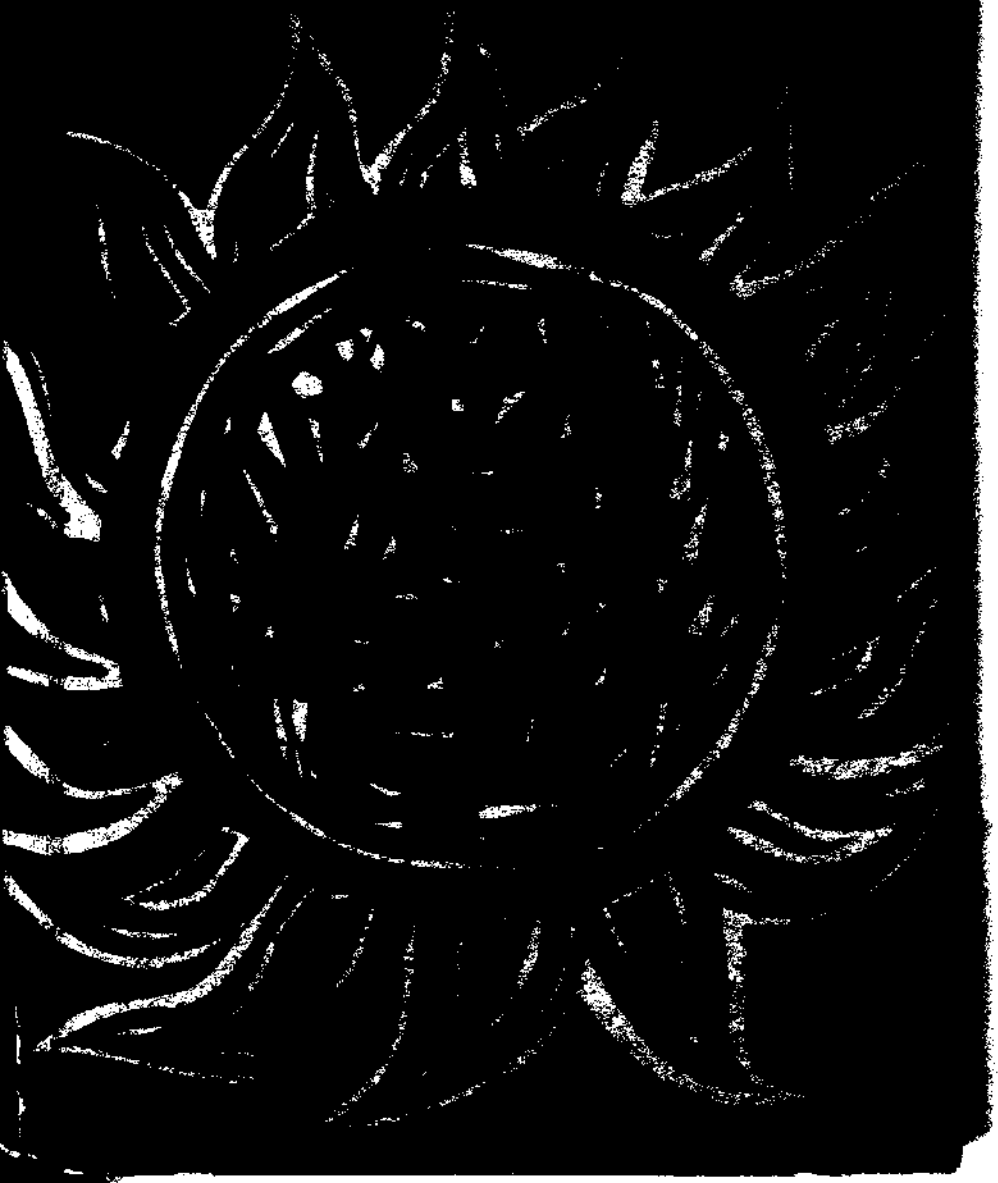

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

सूर्यमुख

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

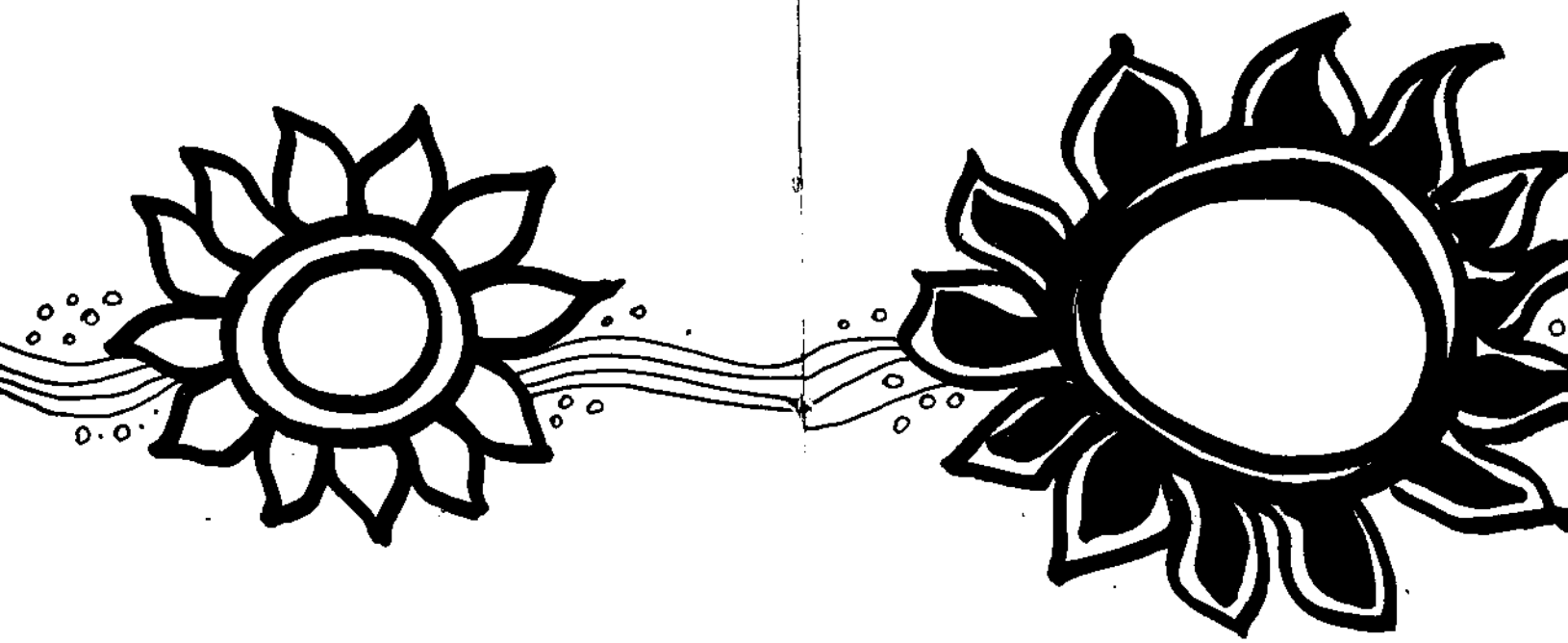

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
शाखा : चौड़ा रास्ता, जयपुर

सूर्यमुख को किसी भी प्रकार से मंच पर प्रस्तुत करने, रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म आदि किसी भी माध्यम में लेने, प्रकाशित करने से पूर्व डॉ० लाल की लिखित पूर्व-अनुमति अनिवार्य है।

डॉक्टर नगेन्द्र को

मूल्य : १२.००

स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९७७ / सर्वाधिकार : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल / रूपाभ प्रिंटर्स, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

SURYA MUKH (Drama) *by* Dr. Lakshminarain Lal

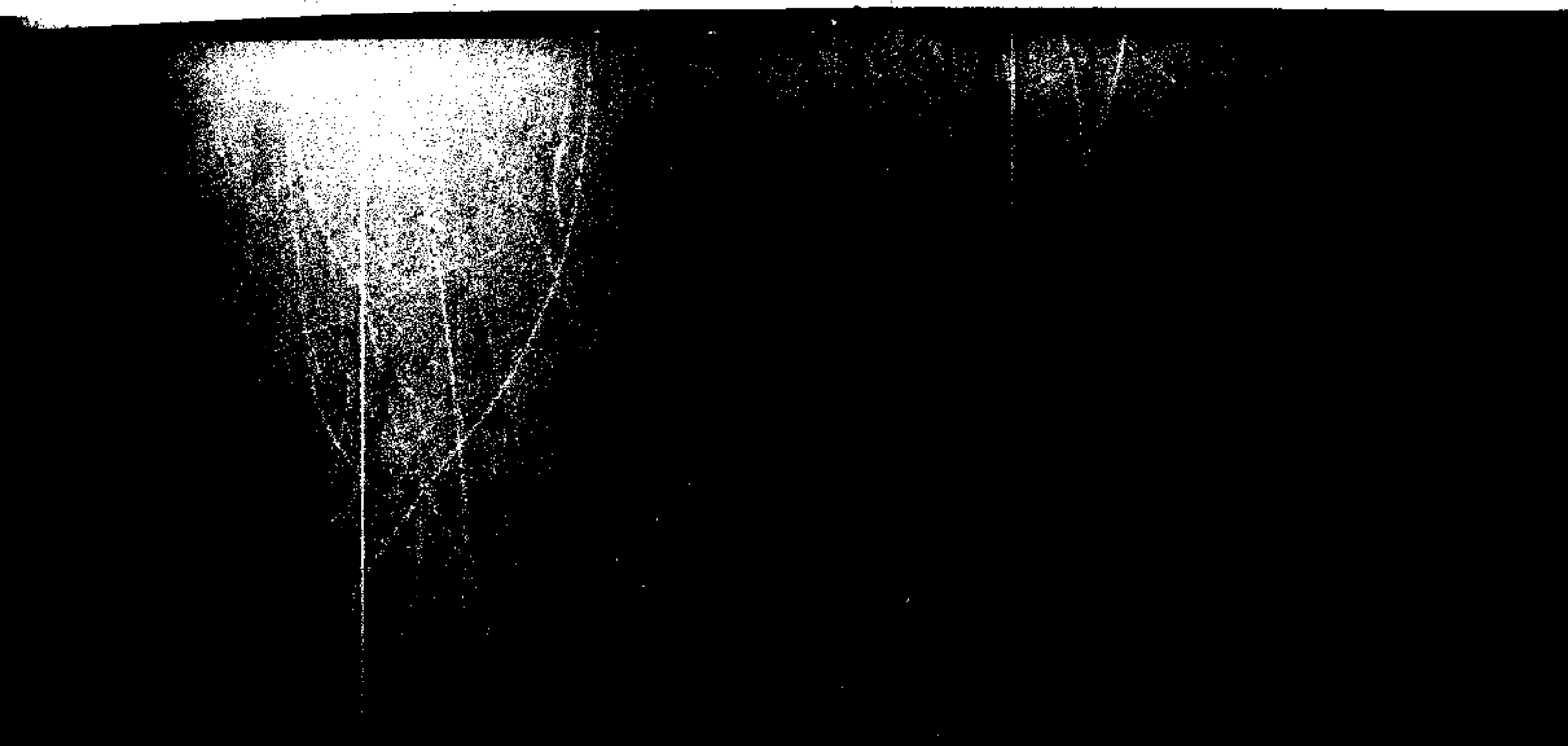

'सूर्यमुख' नाटक का पहला प्रदर्शन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नयी दिल्ली, द्वारा पचीस मार्च उन्नीस सौ बहत्तर को रवीन्द्र भवन के खुले मंच पर हुआ।

प्रवेश क्रम से

भूमिका में :

भिखारी लोग (स्त्री-पुरुष) : राजन सब्बरवाल; वंशी कौल, राजब्बर, जैदेव हथंगड़ी, रमेश पांडे, राजेश विवेक, आर० टी० रामा, सोनूकृष्न, नीलम मानसिंह; सबा जैदी, श्रेष्ठा ठक्कर

आहुकी : बी० जैश्री

दुर्गपाल : सी० एस० वैष्णवी

परिचारक : के० आर० मनोज, अरुन अवस्थी

रुक्मिनी : ज्योति देशपांडे और छाया आनन्द

परिचारिकाएं : छाया आनन्द, ज्योति देशपांडे, किरन घई, रोहिनी ओक, अर्चना खोसला

वभ्रु : नासिरुद्दीन शाह

जरा : शरद व्यास

साम्ब : राजेन्द्र जसपाल

व्यासपुत्र : मनोहर सिंह

प्रद्युम्न : ओम पुरी

संगीकर : बी० के० मोहन्थी

वेनुरती : रोहिनी ओक और सुहास काले

परिचारिका : विजय गुप्ता

वृद्ध : हरजीत सिद्धू
अर्जुन : भानु भारती
यदुवंशी : एन० एन० शुक्ला, के० एन० चोपड़ा, उमेश लूथरा, अशोक मनदाना, प्रसन्ना, योगेश गंभीर, सुधीर कुलकर्नी, के० के० पाहवा, शैलेन्द्र कुमार, जी० एस० मराठे।
सैनिक : प्रदीप कुमार, अजित बच्चानी, आर० के० थियम, एस० पी० कादरी, विपिन कोटक, एस० पी० क्यू० चिस्ती, के० आर० मनोज, अरुण अवस्थी।

निर्देशक और
प्रस्तुतकर्त्ता : ई० अल्काजी
वेश-भूषा : रोशन अल्काजी
मंच-विन्यास : गोवर्धन पांचाल
ई० अल्काजी
प्रकाश : जी० एन० दासगुप्ता
रूप-सज्जा : इन्दु घोष
मंच-व्यवस्था : बलराज पंडित, वंशी कौल, प्रदीप कुमार, एस० पी० कादरी।

सूर्यमुख : एक साक्षात्कार

मध्यकालीन साहित्य के समक्ष मिथक बनने की समस्या थी और आज की चुनौती अपने को मिथक बनने से रोकने या काट लेने की है। आज का साहित्यकार मिथक का प्रयोग परंपरा मुक्ति के लिए करता है। इस प्रयास में वह अपने और अपनी रचना के लिए एक खतरा स्वयं मोल ले लेता है, क्योंकि उस खतरे को उठाये बिना वह अपनी युगीन संवेदना को मूर्तिमान करने में अपने को असमर्थ पाता है। यदि वह प्रचलित मुहावरे का प्रयोग करता है तो यथास्थितिवादी उसे अपने हितों की पूर्ति के लिए मनचाहे ढंग से व्याख्यायित करके उसकी शक्ति को ही तोड़ देते हैं। फलतः संपूर्ण संदर्भ में परिस्थिति की विभीषिका को प्रस्तुत करने के प्रयास में विखंडित हो जाता है। लक्ष्मीनारायण लाल ने इस खतरे भरी विवशता को समझकर ही 'सूर्यमुख' और 'कलंकी' में मिथकों के माध्यम से वर्तमान जीवन तथा उसकी असंगतियों को उनकी अधिकतम संभावनाओं के साथ संप्रेषित करने का जो प्रयास किया है, उससे हिन्दी नाटक जगत् में कतिपय सर्वथा मौलिक क्षितिज उद्घाटित हुए हैं।

'सूर्यमुख' प्रतीक के रूप में आत्म-साक्षात्कार की स्थिति का द्योतक है। प्रद्युम्न (कृष्णपुत्र) और उसकी प्रिया वेनुरती (कृष्ण की अन्तिम पत्नी) जिस अनुराग-सूत्र में बंधे हैं, वह उन्हें आत्म-साक्षात्कार की ओर उन्मुख करता है। कृष्ण ने अपने से पूर्व की मर्यादाओं का खंडन किया था। वेद, लोक और परिवार की

रूढ़ियों को तोड़कर गोपी-प्रणय किया, किंतु, इस क्रांति ने भी क्रांति की प्रक्रिया को अक्षुण्ण बनाये रखने की मान्यता को स्वीकार करना अनुपयुक्त समझा और नये धर्म, लोक-व्यवहार एवं परिवारों की रूप-रचना करके उसे शास्त्रीयता प्रदान की। महाभारत का युद्ध कृष्ण द्वारा स्थापित उस नवीन परंपरा की रक्षा का एक प्रयास था। उनके द्वारा प्रशिक्षित सेनानायक अर्जुन महाभारत को जीतकर भी नवीन युग-चेतना के समक्ष अपने को निरंतर पराजित अनुभव करता गया। यह अर्जुन की नहीं, कृष्ण की पराजय थी जिसे यहां कृष्ण-मृत्यु के रूप में बार-बार सामने लाया गया है। इस नाटक में रुक्मिनी वेनुरती और प्रदुम्न को प्रेम से विरत करती है क्योंकि इससे परंपरा का अंधकार मिट सकता है और सभी प्रेम के लिए अग्रसर हो सकते थे। प्रेम को पाप मानना इस काल की वस्तुस्थिति है। दुर्गपाल समस्या को अनेक रूपों में प्रस्तुत करता है—"क्या वास्तव में प्रदुम्न ने अधर्म किया है? बोलो, प्रेम अधर्म है क्या?" और प्रदुम्न के महत्त्व को स्वीकारता है—"वह प्रदुम्न भविष्य है। वह नया है। सूर्यमुख है वह। उसने इस अंधकार में प्रेम का एक नया मनवंतर प्रारंभ किया है।" दुर्गपाल जैसा इतिहास द्रष्टा भी परिस्थिति से जूझने की बात न सोचकर भाग्यवादी बनने को विवश है, परिस्थिति की विभीषिका इससे समझी जा सकती है। मिलन-काल में भी प्रदुम्न मुखौटा लगाये रहता है। वेनुरती से प्रेम करता हुआ भी वह अपने से जूझता रहता है, क्योंकि, वेनुरती का माध्यम जिस आत्मोपलब्धि के लिए है उसकी याचना नहीं की जा सकती, उसे तो प्राप्त किया जा सकता है। वेनुरती महसूस करती है—"मेरे प्राण! जिस क्षण, तुमने अपने मुख का मुखौटा तोड़ा है, उस क्षण अंतःपुर में मुझे ऐसा लगा, जैसे इस नगर में सहसा कोई सूर्य उग आया है।"

कृष्ण के जरा द्वारा मारे जाने पर यदुवंशी आपस में लड़ने लगे हैं कि हमने महाभारत का युद्ध लड़ा है, अब हमारे भोग-अधिकार का समय है। काल-समुद्र द्वारिका को डुबाता आ रहा है। इस संघर्ष में अंधकार की प्रधानता है। प्रेम के अभाव का परिणाम चारों ओर से घिरने वाली संकट-घटाएं हैं। एक ओर प्रकृति क्रुद्ध है और दूसरी ओर मानव दरिंदा बनकर घृणा को बढ़ा रहा है जिसे हम संकट के रूप में देखते हैं। यदि कहीं कोई प्रकाश या आशा है तो प्रदुम्न और वेनुरती के प्रेम से, जो अर्थ से इति तक प्रकाश-स्तंभ के समान अडिग खड़ा है।

नाटक के अंत में जब प्रदुम्न युद्ध में विजयी होकर लौटता है तो वेनु को न पाकर मुकुट को सीढ़ियों पर फेंककर अपनी प्रिया की खोज में चल देता है। अंत में जब प्रदुम्न और वेनु मरते हैं, तब एक-दूसरे को पाते हैं—

वेनु : मेरी आंखों में देखो। छुओ मेरे घाव को। कमल-पराग में मछली सोयी है। और स्वप्न देख रही है, अब रात बीतने को है।

प्रदुम्न : (वेनु को थामे हुए) हमारे संशय निर्मूल थे। हमारे भय अर्थहीन थे। वह काला पर्वत अब गल रहा है। हम इसकी चोटियों से गिर रहे हैं। अब यह क्षण बिखरने को है।...

नाटककार के समक्ष अपना परिवेश इस व्यापकता के साथ घनीभूत हो उठा है कि वह अपने प्रतीकों से उतर कर, अनेक बार आधुनिक यथार्थ में प्रविष्ट हो जाता है। नाटक को आज के संदर्भ से काटकर नहीं समझा जा सकता। वर्तमान संदर्भ को अर्थ देने के लिए नाटक में अनेक संकेत हैं जो वर्तमान के साथ-साथ अतीत को भी नवीन अर्थवत्ता प्रदान करते हैं—"महाभारत के बाद कृष्ण ने अपनी नारायणी सेना को भंग करने का आदेश दिया था, पर तुम सब उस सेना को टुकड़ों में बांटकर उसी के सहारे राज्य-लिप्सा के युद्ध में डूब गये...।" आज का बुद्धिजीवी अपने को प्रदुम्न के रूप में खोज सकता है। यद्यपि अर्जुन, रुक्मिनी और जरा आदि के रूप भी उसी के भीतर हैं, किंतु, उसे उन्हें खोजकर अपने से वियुक्त करना है। जब तक ऐसा नहीं होगा सूर्याभिमुख (आत्म-साक्षात्कार) होना संभव नहीं है। इसी प्रकार अनेक अन्य संदर्भों से भी इसे जोड़ा जा सकता है।

'सूर्यमुख' में मध्ययुग की रंग-प्रणालियों (मुखौटा आदि) का प्रथम बार प्रयोग हुआ है और यह प्रयोग आधुनिक संदर्भ में होने के कारण यथार्थ के चौखटे को तोड़कर बाहर निकल आया है। 'सूर्यमुख' के नाट्य अथवा इसके रंगमंच में कई महत्त्वपूर्ण बातें हैं। इसका रंगमंच इसके भीतर ही व्याप्त है। इसके नाट्य की प्रकृति भारतीय परंपरा से है। यह अपनी ही रंग-मिट्टी से उपजा है। इसकी भाषा, इसका संगीत तत्त्व, इसमें व्याप्त अभिनय तत्त्व और इसका परम व्यावहारिक नाट्य, रूपबंध सब लाल की अपनी सृजनात्मक उपलब्धि हैं। और यही शुद्ध भारतीय नाट्य परंपरा का आधुनिक प्रयोग है।

नाटककार जिस यथार्थ का साक्षात्कार कराना चाहता है, उसके सर्वथा

उपयुक्त कथा-बिम्ब खोजना उसकी रचना-प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। लाल ने 'सूर्यमुख' में पुराण और मिथक तत्त्व को अपनाया है, और यह प्रयुक्त भी इस कौशल के साथ हुआ है कि व्यक्ति-यात्रा, इतिहास-यात्रा, संस्कृति-यात्रा एवं राजनीति-यात्रा आदि अनेकविध स्थितियां एकसाथ उद्घाटित हो उठी हैं। दरअसल इस संश्लिष्ट दृष्टि द्वारा ही आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार किया जा सकता है। इसी दृष्टि के कारण 'सूर्यमुख' को ऐतिहासिक-पौराणिक नाटक समझने की भूल से बचा जा सकता है। इसमें नाटककार की दृष्टि मानव-सत्य को तलाश करने की रही है, क्योंकि वे मानव को ही अंतिम आशा के रूप में स्वीकार करते हैं। यह तलाश किसी बंधी-बंधाई परिपाटी पर चलकर नहीं हुई (ऐसा हो भी नहीं सकता था) क्योंकि ऐसा करने से अतिरिक्त दृष्टि का आरोपण अनिवार्यता बनकर प्रकट होता और रचना अपने उद्देश्य को खो बैठती। उन्होंने पूर्ण संवेदनशील एवं तटस्थ रहकर अपनी रचना से अपने को (भोक्ता मन को) अलग हटाने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है।

नाटककार के स्रष्टा मन में चलने वाला नाट्य-सृजन तत्त्व तो प्रकट हुआ है, किंतु, उसकी अन्विति केवल पुस्तक पाठ धरातल से अपनी पूर्णता को नहीं प्राप्त करती। यत्र-तत्र उसके संकेत हैं, जिन्हें पकड़कर नाटक की मूल संवेदना तक पहुंचा तो जा सकता है; किंतु, वे इतने मुखर नहीं हैं कि सभी को सहज बन जाते। संभवत: नाटककार ने यह उपयुक्त समझा है कि नाटक में रचनाकार मन का संघर्ष अपनी अधिकाधिक विभीषिका में साकार होना चाहिए और उसकी अन्विति की सूक्ष्म संकेतों द्वारा व्यंजना मात्र करायी जानी चाहिए। यहीं निर्देशक अभिनेता, रंग समीक्षक, एवं दर्शक अपना अस्तित्व पाने लगते हैं। कृति अपने लिखित रूप में पूर्ण न होकर पूर्णता की संभावनाओं के लिए छोड़ दी गयी है। जिस रंगमंच के धरातल से इसकी रचना हुई है (यह लिखी न जाकर रची गयी है) उसी धरातल का निर्देशक, अभिनेता और दर्शक की चुनौती पेश करता है। फलत: यह नाटक अपने ही विरोध में खड़ा हुआ है। नाटककार ने इस नाटक में जो रंग-संकेत दिये हैं, उनसे रंग समीक्षक, निर्देशक, दर्शक एवं नाटक के लिए असंतोष ही पैदा हुआ है, तो हिंदी नाटक के लिए शुभ कहा जा सकता है। 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' की प्रस्तुती में प्रख्यात निर्देशक इ० अल्काजी ने अपने निर्देशन में 'सूर्यमुख' का जो प्रदर्शन दिया है, वहां अपने मंच-स्वरूप में यह अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ

है। पाठ्य-पुस्तक से रंगमंच तक जो इसके आयाम फैले हैं, वही वस्तुत: सूर्यमुख है। इसका अभिनय-आयाम इसका काव्य-आयाम है। और काव्य-आयाम ही इसकी आधुनिकता और शक्ति है। दृश्यात्मकता ही इसका मूल आधार है। वह दृश्य-तत्त्व इसके पाठ-तत्त्व में परिव्याप्त है, और वही इसका मूल रस है।

इस नाटक की रचना-प्रक्रिया परंपरागत समसामयिक हिन्दी नाटकों से मूलत: भिन्न है; क्योंकि इनमें खंडित बिम्बों का समीकरण प्रस्तुत न करके एकल बिम्बों को ही उनकी सापेक्षिक पूर्ण संश्लिष्टता में उभारा गया है। यही कारण है कि यह नाटक वृहत्तर यथार्थ, मानव सत्य एवं बौद्धिक संवेदन से युक्त होकर भी, यहीं रुक नहीं गया है, वरन् ऐसे काव्य-बिम्बों को उभारने में समर्थ हुआ है जिनके अभाव में इसे अपना मार्ग खोज पाना संभव न होगा। जरा और प्रदुम्न के बीच चलने वाला संवाद गुम्फित बिम्बात्मकता को प्रस्तुत करता है—

जरा : हां, मुझे याद आता है, मरते समय कृष्ण ने वेनुरती का नाम लिया था···कहा था—वेनुरती मेरी अंतिम रानी—मेरा अंतिम प्रेम···

प्रदुम्न : अंतिम प्रेम ?

जरा : मेरा बाण लगते ही कृष्ण चीत्कार कर उठे। अपना पीतांबर फाड़ डाला। बांसुरी फेंककर मुझे मारा, और वह भयानक आवेश में मेरी ओर दौड़े। मैं वृक्ष के एक झुरमुट में छिप गया। और देखने लगा, उनकी आंखों से आग की लपटें निकल रही हैं। वह हाहाकार करते हुए कुछ बोल रहे हैं।

रचना-प्रक्रिया के इस सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण को स्वीकृति प्रदान करने के कारण इस नाटक में भूमिका, उपसंहार और नाटकीय विकास के परंपरागत चरण आदि की उपलब्धि का प्रश्न ही नहीं उठता है। पूर्ण संश्लिष्ट कृति में परंपरा से आगे जाकर सर्वथा मौलिक एवं नवीन सत्य का साक्षात्कार आवश्यक होता है। अत: कृति से सच्चा साक्षात्कार करने वाली नाट्य-दृष्टि जब तक इस नवीनता को आत्मसात् नहीं करेगी तब तक वह कृति एवं वृहत्तर यथार्थ के संबंध सूत्रों की खोज करने में सफल नहीं हो पायेगी। इस नाटक ने एक नव्यतर नाट्य-दृष्टि की मांग की है, जिसके अभाव के कारण स्थापित रंगपरिवार (जिसमें निर्देशक से लेकर दर्शक तक सभी आ जाते हैं) इन्हें समझ पाने में असमर्थ सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ कहा जा सकता है कि इस नाटक द्वारा भारतीय

सांस्कृतिक परंपरा को गहरी एवं नवीन दृष्टि प्रदान की गयी है जिससे मध्ययुगीन एवं आधुनिक व्यवस्थाओं को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है तथा एक ऐसी कला-दृष्टि विकसित की जा सकती है जो कलाकृतियों में निहित अद्यावधि अज्ञात सौंदर्य-स्रोतों को उद्घाटित कर सके।

इस नाटक का संवेदन, वस्तुपरक एवं बहुआयामीय होने के कारण जीवन संदर्भों के रहस्योद्घाटन में अत्यधिक सजग है। दर्शक के समक्ष वह एक सम के रूप में उपस्थित होकर भी समभंग का रूप ग्रहण करता है जिससे गति एवं अगति एक ही बिंदु पर अन्विति रूप में आ उपस्थित होती हैं। इस रचना-शिल्प को समझने के लिए हमें रचना बिम्ब तक जाना होगा और देखना होगा कि वहां संगीत, विचार, मिथक एवं परिवेशात्मक स्थितियां एक गहरे अर्थ को रूपायित करने के लिए सक्रिय हैं। नाटककार अपनी बात सचल एवं सवाक् चित्रों द्वारा इस विश्वास के कारण कहता है कि दर्शक इनके माध्यम से उसके प्रत्यय को अपने हृदय में पुनः सृजित कर लेगा। यही कारण है कि यह नाटक अपने दर्शकों के लिए प्रयोगात्मक दृष्टिकोण लेकर चला है, क्योंकि नाटक में दर्शक का योगदान जितना अधिक होगा, नाटक की शक्ति भी उसी अनुपात में अधिक मानी जायगी।

इस नाटक की रचना-प्रक्रिया को सामने रखकर, उसके साथ यात्रा करना, इन्हें समझने के लिए अनिवार्य है। इसकी रचना में विशिष्ट के सामान्यीकरण की प्रक्रिया स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। प्रतीत होता है कि नाटककार के भोक्ता मन में अपने सम-सामयिक यथार्थ की अति विशिष्ट स्थितियों (अति विशिष्ट का यहां अर्थ रचनाकार मन के लिए पर्याप्त कारण प्रस्तुत कर देने की क्षमता से युक्त होने से है) को सामान्य से भिन्न—असाधारण रूप में ग्रहण किया गया है, क्योंकि उनमें भोक्ता मन को आंदोलित करने की एक ऐसी विशेषता थी जिसके वशवर्ती बनकर वे अपने को रोक पाने में असमर्थ बन गये होंगे। इस परवशता ने भोक्ता मन के अनुभव को स्वीकृति प्रदान कर रचनाकार मन के पास प्रेषित किया है। रचनाकार मन में इस भोक्ता मन की प्रतिक्रिया ने, कारण रूप में प्रस्तुत होकर, रचनाकार मन के विधायक तत्त्वों के विरुद्ध जो द्वन्द्व प्रस्तुत किया है उससे विशिष्ट सामान्यीकरण की ओर एवं रचनाकार मन के सामान्यीकृत तत्त्व वैशिष्ट्य की ओर उन्मुख होते चले गये हैं। इस स्थिति को इस नाटक में अथ से इति तक प्रत्येक स्तर पर देखा जा सकता है। यदि प्रक्रिया यहीं समाप्त हो गयी

होती तो यह नाटक द्विआयामीय बनकर सामान्य स्तर प्राप्त कर जाता; इसके विपरीत यह नाटक संघर्षात्मक स्थितियों को पार कर अन्विति तक पहुंचता है। इस स्थिति तक पहुंचने के लिए संघर्षकाल में, विशिष्ट में व्यक्ति मन की अनुभूत्यात्मक स्थितियों की प्रमुखता क्रमशः पिछड़ती गयी है एवं स्रष्टा मन का विधायक रूप उन पर हावी होता चला गया है। इस स्थिति को समझने के लिए हम इस नाटक में उपलब्ध भावनापुंज, विविध अनुभूतियों की सामान्यताएं, कल्पनाएं, विचारात्मकता, सौंदर्य-तत्त्व समन्वित सृजनशक्ति, संस्कारवत्ता एवं तटस्थता आदि में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामान्यता का प्राधान्य पाते हैं। यह संघर्ष अंततः एक पूर्ण बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ सिद्ध होता है। इसे हम इस नाटक का मूल रचना-बिम्ब कह सकते हैं। यह बिम्ब विशिष्ट और सामान्य की अन्विति होने के कारण, दोनों से सर्वथा स्वतंत्र होते हुए भी, दोनों के उन जीवंत तत्त्वों को भी आत्मसात् किये हुए है, जिनसे रचना-धर्मिता के तंतु जुड़े हैं। यही कारण है कि इस नाटक को न पौराणिक कहा जा सकता है, न सामाजिक यथार्थवादी, न प्रतीकवादी और न रसवादी; यद्यपि किसी न किसी मात्रा में इसमें ये सभी तत्त्व होते हुए भी यह सर्वप्रथम नाटक है और ऊपर बताये गये तथा अन्य सभी तत्त्वों को इसमें प्रक्रिया के अंग के रूप में प्रयुक्त किया गया है एवं इसकी रचना एक जीवंत रंगमंच के भीतर से हुई है। यहां बातें कही नहीं गयी हैं वरन् अभिनयात्मक स्थितियों में रच दी गयी हैं। यदि कथन को प्रधानता प्राप्त हो गयी होती तो यह नाटक बृहद कलेवर वाला होता। 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न समक्ष आता है मुखौटे में और दृश्य तुरंत द्वारिका में पहुंच जाता है। लगता है जैसे नाटक यहां एब्सट्रैक्ट पेंटिंग का रूप धारण कर गया है। दृश्य सामने आता है, कुछ रचकर चला जाता है और फिर दूसरा दृश्य आ जाता है। रचना-प्रक्रिया की यह संश्लिष्टता ध्यान देने योग्य है।

रचना के मूल बिम्ब को साकार करने के लिए नाटककार ने जो साधन अपनाये हैं, वे मूलतः संघर्षी प्रकृति के हैं। रचना-प्रक्रिया के इस द्वितीय चरण में रचनाकार तटस्थ नहीं रह पाया है। वह मूल बिम्ब का पक्षधर बनने को विवश हुआ है और इसका कारण संभवतः, बिम्ब का रचनाकार के स्वकर्मी तत्त्वों से आक्रांत होना रहा है। अभिव्यक्ति के लिए नाटककार मूल बिम्बों को फिर एक बार सामान्यीकृत होने के लिए विवश करता रहा है, जिससे अभिव्यक्ति ने अनेक

प्रयोगों से गुज़र कर अपनी अंतिम स्थितियां स्वीकृत की हैं।

इस रचना-प्रक्रिया को समझकर इस नाटक के संदर्भ में यह कहना आवश्यक लगता है कि विशिष्ट का यह सामान्यीकरण धर्म, दर्शन या समाजविज्ञान के माध्यम से भी किया जा सकता था, किंतु, उनमें विरोधों की अन्विति उस व्यापकता को स्वीकृति प्रदान न कर पाती जो इस नाटक द्वारा संभव हो सकी है। जिन सापेक्षिक सत्यों को इसके द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वे अपनी सापेक्षिकता के लिए परस्पर विरोधी तत्त्वों के एकान्वय से शक्ति संचयन करते हैं। इस नाटक में व्याप्त सामान्य मानवीय भावना भी क्षण विशेष में अनेक विरोधयुग्मों से संक्रमित होने के कारण, एक प्रकार की तल्लीनता, तन्मयता अथवा आत्मविस्तार की स्थिति उत्पन्न करती है। परिणामतः दर्शक का 'स्व', रचना-यथार्थ एवं बृहत्तर यथार्थ सब एकसाथ प्रकाशित हो उठते हैं।

परंपरागत नाटकों में जो एक लय मिलती है, उसे इस नाटक में तोड़ा गया है। यहां नाट्य की दिशा सपाट न होकर वर्तुलाकार है—स्थूल से सूक्ष्म की ओर और फिर सूक्ष्म से स्थूल की ओर। फलतः उसमें भाव, अभिव्यक्ति एवं रंग एक बिंदु पर उपस्थित हैं। इस समान बिंदु को पकड़े बिना नाटक की पकड़ नहीं हो सकती। स्वाभाविक ही है कि यह परंपरा खंडन का खतरा उठाने वाला नाटक, एक प्रकार के प्रशिक्षित प्रेक्षक वर्ग की याचना करे तथा उस बिंदु को साक्षात् कराने वाले रंगकर्मियों की समस्याओं को सर्वथा मौलिक स्तर प्रदान करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

जीवन की शोध-प्रक्रिया में नाटक का योग वर्णनात्मक विधाओं की अपेक्षा अधिक गहन एवं संकुल है। हम मनुष्य, उसके परिवेश, जीवन, सुख-दुःख एवं बहुआयामीय संघर्षमयता को समझना चाहते हैं। हमारी जिज्ञासा उसको छूने वाले सभी संबंध सूत्रों को समेट कर चलती है। नाटक द्वारा हम जीवन से साक्षात्कार करते हैं और इस प्रकार वह हमारे जीवन का अविभाज्य अंग बनकर सामने आता है। परंपरा-प्राप्त हिंदी रंगमंच पर प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रतिबंधों के कारण नवीन प्रयोगों के लिए कम अवकाश रहा है। इस नाटक में विहित इसका रंगमंच इस सीमा तक मुक्त है कि उसे सर्वथा नवीन रंग-परंपरा का प्रस्थान-बिंदु कहा जा सकता है। इसमें केवल नव्यतर संवेदना ही नहीं है, वरन् उसे साकार करने की वह रंगप्रणाली भी है जिसका इंगित ऊपर किया जा चुका

है; अर्थात् नाट्यविधान साहित्य और रंगमंच को एक-दूसरे के पूरक रूप में प्रस्तुत न करके (परंपरावादी दृष्टि यही है) विरोधी रूप देता है तथा प्रेक्षक इसे स्वीकार न करने की भूमिका अपनाता चला जाता है और आश्चर्य है कि अंत में दर्शक को लगता है कि नाटककार और निर्देशक द्वारा वह तो एक स्थिति प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् वही नाटक है, वही मंच है और वही अपने नाट्य का अकेला दर्शक है। जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है, रंगमंच उससे जुड़ता-सा लगने लगता है और क्रमशः धूमिल पड़ता हुआ सब कुछ एक बिम्ब के रूप में सिमट उठता है। इससे एक चुनौती रंग-परिवार के सभी सदस्यों के समक्ष पेश हुई है कि यदि उनमें पर्याप्त सर्जना और रंग-कल्पना शक्ति नहीं है तो वे इस नाटक के साथ न्याय नहीं कर पायेंगे और इसे सीमित कर देने के उत्तरदायी सिद्ध होंगे।

प्रतीकों की जीवनीशक्ति को देखकर उनके प्रयोग-औचित्य का निर्णय हो सकता है। पात्र नहीं, चरित्र घटना नहीं, कार्य और शब्द ही नहीं नाट्य भी एक प्रतीक ही है। देखना यह होता है कि इस प्रतीक द्वारा जीवन की कितनी गहरी और वैविध्यपूर्ण शोध की जा सकी है। लाल ने इस नाटक को समग्र जीवन का प्रतीक माना है, किंतु यह बात एक सीमा तक ही स्वीकृत है, क्योंकि इसे यदि केवल परोक्षता की सीमाओं में प्रतिबंधित कर दिया जाता तो यथार्थ का वह साक्षात्कार न हो पाता जो अब दृश्य, श्रव्य, स्पर्श तथा मंच आदि तत्त्वों से युक्त जीवन-दृश्यों द्वारा हो सका है। इ० अल्काजी का 'सूर्यमुख' का प्रदर्शन इसका एक जीवंत उदाहरण रहा है।

इसके प्रत्यक्ष रंगमंच पर इसकी बिम्बात्मकता असामान्य, संकुल और गुंफित है। इसके द्वारा (आधुनिक मानव की संश्लिष्ट स्थिति और राजनीति का कर्मकांड) आज को अबाध काल-संदर्भ से जोड़ा जा सकता है।

आधुनिक पश्चिमी यथार्थवादी नाटकों से प्रभावित नाटकों में जो बाह्य आरोपण क्रमशः बढ़ता रहा है, उसके विपरीत इस नाटक में चरित्रों को उन्हीं के भीतर से उभारा गया है और सारा नाटक अपने-आप स्वाभाविक रीति से उदित होता चला गया है। चरित्रों को नाटक के अंतर्गत जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उसी को समक्ष रखकर उन पर विचार करना उपयुक्त नहीं लगता, वरन् संपूर्ण नाटक के उद्देश्य के पूरक एवं संघर्षी तत्त्वों की अन्विति के रूप में ही मैं

उन्हें देख पाता हूं। लगता है, नाटककार जिस चुनौती को सामने पाता रहा है, उसके लिए उसने पात्रों की तलाश जारी रखी है और थककर अनुपयुक्त को उपयुक्तता प्रदान करने की विवशता में से वह शक्ति उभरती है जो पात्र को पीछे छोड़कर नाटक को पात्रों से भी आगे चरित्र तक ले जाती है और दर्शक नाटककार एवं चरित्र के मध्य चलने वाले द्वंद्व को अनुभव करता चलता है।

—डॉ० एम० एल० शर्मा

'सूर्यमुख' नाटक के अभिनय-प्रदर्शन, अनुवाद तथा फिल्मीकरण आदि के लिए लेखक की लिखित पूर्व-अनुमति आवश्यक है।

चरित्र

० ०

प्रदुम्न
वभ्रु
साम्ब
संगीकर
अर्जुन
जरा
दुर्गपाल
व्यासपुत्र
वृद्ध
दो सैनिक

तथा कुछ भिखारी—हारिक, देवक, विलोमन, विदूरथ, अघू और पतोला तथा आहुकी
वेनुरती
रुक्मिनी
परिचारिका तथा यादवीगण
यदुवंशी
यादवी
परिचारक

पहला अंक

•

पहला दृश्य

स्थान : द्वारिका का राजदुर्ग
समय : संध्या।

[दुर्ग के मैदान में इधर-उधर कुछ भिखारी बैठे हैं।]

हारिक : एहो पतोला ! मो कही, बड़ी बेर है गई।

देवक : हां-हां, सांझ है गई तो लड्डू फोड़ो !

विलोमन : आजु चारों ओर बड़ो सूनो लगि रहो।

विदूरथ : राजा मृत्युशय्या, प्रजा भूमिशय्या !

हारिक : हे ! कविता चबाई रहो !

हारिक : पता नहीं राजा मरेगा कब ?

विलोमन : जे प्रदुम्न और वेनुरती का प्रेम, हा-हा-हा !

देवक : नेवला और सर्प की लड़ाई देखो है ?

हारिक : हां-हां, क्यों नहीं !

देवक : सो इधों लड़ाई ना, दृगन को खेल।

विलोमन : सब राजमहल के चोंचले हैं। प्रजा तो कीड़ो-मकोड़ो हैं ! चाहे मरें चाहे जलें—काको है हमारी चिंता? राजा नाचै नंगा, प्रजा ताली दे ! बेशरम···निरलज्ज···पातकी !

विदूरथ : ओइ, याको खूब क्रोध आवै। क्यों रे पतोला, का गुनि रहो है ?

पतोला : (अपनी ही धुन में गाता है)

फागुन में परयो तुषार
चैत में उखटा
कां ते रंगाय देउं दुपटा·····
हाय रे फागुन में·····

[शेष भिखारी हंस पड़ते हैं और मज़ाक करते हैं।]

पतोला : (गाता है)

कोठे पै ठाढ़ी नार
झूमका सोने को
जाये लगो चाव गौने को·····
अन्न टका भर खाय
सूख गयो चोला
मेरौ पड़ि गयो नाम पतोला·····

[भिखारी परस्पर हंसते-बोलते हैं। उसी समय राजमहल से पूजा-वाद्य-ध्वनि उभरती है। मंत्रोच्चार होते हैं।]

विलोमन : हे, जान पड़ि रहो है, राजा मरि गयो।

विदूरथ : तब तौ आजु खूब मिली भिच्छा। आ हा हा ह्वई ह्वई तुम बो—तुम बो···। वो आयी नगर सुन्दरी···।

[आहुकी आती है। भिखारी उसकी ओर देखते हैं। पतोला उठकर संकेत करके बताता है कि आहुकी गर्भवती है।]

हारिक : ह्वै, चुप बे !

पतोला : कौन कौ छोरा ऐ ?

देवक : चुप···ऐ-सें-ई। (पतोला को मारता है और वह ही-ही करके हंसता रहता है) हां-हां, चुप रै, सबै तोय पहिचान गयो, मूरख तौ नाई।

विलोमन : का रे आहुकी माई, तैंने मोहे नाय पहिचानौ। मो द्वारिका कौ सोनार (औरों का परिचय देता हुआ) जे है हारिक, मछुआरा—और जे है देवक, किसान, जे है विदूरथ शिल्पी, जे है अघू चाकर, और जे है पतोला गायक।

देवक : जे के ?

विलोमन : जे है आहुकी, किसान स्त्री। जाके सब परिवार को यदुवंशियों ने हत्या करि डारी।

आहुकी : आजु भिच्छा को बड़ी देर है गयी। राजा उग्रसेन कों ईशर कुशल सों राखे।

[उसी समय भीतर से दान-पात्र लिये दुर्गपाल आता है, और सामने बढ़कर सीढ़ियों से उस स्थान पर जाकर खड़ा हो जाता है, जहां द्वारिकाधीश की पताका लहरा रही है।]

दुर्गपाल : मृत्युशय्या पर पड़े द्वारिका के राजा श्रीमन् उग्रसेन की आत्मशांति के लिए चलो दान लो।

[भिखारी झपटते हैं और भिक्षा के लिए परस्पर छीना-छपटी करते हैं।]

दुर्गपाल : धैर्य रखो, आज सबको बहुत दान मिलेगा।

हारिक : हां भइया, धीरज राखो बहोत दान मिलेगा। जे पेट है कि समुंदर।

पतोला : राजा की मौत के बाद या पहले ?

दुर्गपाल : चुप रहो।

कई भिखारी : हां-हां, ठीक कहो है—बोय-होय··· हा-हा-हा ऐ मारा—हाय हो। आ हा हा। अइ अइ···अई।

[दुर्गपाल दान बांटता है। भिखारी बेतरह झपट रहे हैं। दुर्गपाल दान-पात्र को ऊपर उठाये हुए इधर-उधर भागता है। भिखमंगे सहसा उस पर झपट पड़ते हैं। पात्र गिर जाता है। सब उस पर टूट पड़ते हैं। तभी भीतर से अपनी परिचारिका के साथ रुक्मिनी का प्रवेश। परिचारिका के हाथ में दान-पदार्थ से भरा पात्र है।]

रुक्मिनी : लो दान।

हारिक : ई को है ?

देवक : अरे वही है वही।

दुर्गपाल : तुम सब भाग्यवान हो। चलो महारानी रुक्मिनी के हाथ से दान लो। चलो···बैठो···।

विलोमन : भाग्यवान—थू···जे भाग्य पर बज्र गिरे।

विदूरथ : महारानी रुकुमिनी, हअ प्रदुम्न जननी···जा-जा, नाहीं लेतों तेरे हाथ कूं दान।

दुर्गपाल : क्या कहा ?

अघू : अधर्मी के माई के हाथ कों दान··· छी-छी-छी !

पतोला : हाह···माई नाही,···जननी···जननी। माइ तो ऊ है···वेनुरती—वेनुरती, जा सोंयाकेबेटेने···हा हा हा आ—बेटे

ने। हां-हां सांची बात सांची बात, हां-हां, सच कहूं जो चाहैं सो करैं।

आहुकी : वा सगरी कथा कहे सें का फल मिल्यो ? भाग-करम के लेखा को टारि सको ?

हारिक : हम को मारि के भिखारी कीन ?

देवक : आजु हम अपने द्वारिका मा भिखारी ?

विलोमन : या से पहिले समुद्र किनारे हमरौ घर, धरती, परिवार रहो। हां-हां तैंने, तेरो पुत्र नें हम कूं आजु भिखारी, अभागा, पसु बनाय दीनो।

विदूरथ : बोए ! कौन है कारन ?

अधू : वही याको पुत्र प्रदुम्न···जे द्वारिका नगर पै वाही के पाप का कोप।

पतोला : ओए प्रदुम्न, ताते मिलबै के ताईं यां बौहौत देर ते ठाड़ौऊं। तू भी कछु बोल···?

आहुकी : मैं कछु नायं बोलूंगी···।

पतोला : लाज लागौ त्रिया जात, तौ कहो नायं—ही ही ही ही।

हारिक : जाओ, जाओ, हम कलिंकित दान नाहीं लंगे। हम भिखमंगे नाहीं।··· हम हैं किसान, शिल्पी, मछुआरा, कामकाजी, मानुख कर्मकार। हमें

तेरो धर्म राजनीत सों कछु लेना-देना नांई···

दुर्गपाल : अच्छा तो अब जाओ यहां से।

हारिक : आह···आंखिन देखो···! ···ऐसेंई।

देवक : बोलो किधौं जांय ?

विलोमन : बुला निज पूत कों···हमार परीच्छा तो है गयी, अब तेरो और तेरो पूत की परीच्छा बाकी।

रुक्मिनी : दुर्गपाल, इन्हें बताओ प्रदुम्न कितना दंडित हुआ है।

विदूरथ : हाअ, पूत कौ दंड ?

अधू : दंड या अदंड हमें का ? हम लोगन के करम में सब कछु चल्यौ गयो।

[यह कहते हुए सारे भिखारी चले जाते हैं, केवल आहुकी चुपचाप बैठी रह जाती है। सहसा पतोला बहुत तेजी से लौटता है और लौटकर परिचारिका के हाथ का पात्र छीनता है। दूर सीढ़ियों पर जाकर भूखे जानवर की तरह खाने लगता है। तभी शेष भिखारी आवेश में दौड़े आते हैं, उसे मारने लगते हैं। आहुकी दौड़कर पतोला को बचाती है। पतोला भाग निकलता है। शेष भिखारी उसका पीछा करते हुए चले जाते हैं।]

रुक्मिनी : मैं यही दृश्य देखने को जीवित हूं ?

दुर्गपाल : महारानी !

रुक्मिनी : मैं कलंकिनी जननी ! (रुककर) दुर्गपाल, राजकोष से आधा अन्न निकालकर आज ही इन नगर-वासियों में बांटने की व्यवस्था करो।

दुर्गपाल : राजकोश पहले से ही आधा खाली पड़ा है। पिछले कितने वर्षों से खेती की जगह द्वारिका की धरती पर केवल यदुवंशियों के युद्ध हुए हैं।

रुक्मिनी : जो भी कुछ है, उसी में से आधा बांटने की व्यवस्था करो। और अपने ही हाथ से बांटो···प्रदुम्न की जननी मैं···

[तभी पृष्ठभूमि से शोर सुनायी पड़ता है।]

दुर्गपाल : यदुवंशी आपस में लड़ रहे हैं।

रुक्मिनी : वभ्रु और साम्ब ! ···दोनों कृष्ण-पुत्र !

दुर्गपाल : पर अब वे अपने को कृष्ण-पुत्र नहीं कहते। वभ्रु अपने को भोजवंशी कहता है और सारे भोज यदुवंशी उसके दल में हैं। साम्ब शिनिवंशी यादवों का नायक है।

[रुक्मिनी चुप है।]

दुर्गपाल : यदुवंशियों का एक दल और भी है—विष्णिवंश। ये लोग प्रदुम्न को

अपना नेता मानते हैं।

रुक्मिनी : प्रदुम्न को !

[पृष्ठभूमि का कोलाहल सहसा करीब आ जाता है। जरा का पीछा करते हुए साम्ब का प्रवेश। जरा पशुवत चिल्लाता हुआ चारों ओर भागता है। सहसा दूसरी ओर से भोज यदुवंशियों के साथ वभ्रु का प्रवेश।]

साम्ब : महारानी, यही है कृष्ण का हत्यारा—जरा बहेलिया।

वभ्रु : हाअ सावधान···भाग जाओ, जरा अब मेरे अधिकार में है।

रुक्मिनी : वभ्रु·····

वभ्रु : जरा का वध करने का श्रेय मैं प्राप्त करूंगा।

[जरा भागने लगता है। यदुवंशी उसे पकड़ लेते हैं।]

जरा : कृष्ण···मैंने···मैंने···नहीं नहीं हां, लग लग लग, गया···पुह···पूह ! हो हो हो, हा हा हा अ अ।

साम्ब : जरा को मैंने पकड़ा है। जंगल में पागल पशु की तरह इधर-उधर भागता हुआ चिल्ला रहा था।

रुक्मिनी : आह ! यह विक्षिप्त हो गया है ! दूर करो मेरी आंखों के सामने से !

जरा : हो हो हो ऊहू ऊहू ऊहू ।

वभ्रु : आ हा हा, यह जंगल का आदमी, वहां अच्छा नाचेगा। क्यों रे ताक धिना धिन, ताक धिना धिन, ताता थेई ।

जरा : अयं···वई वई वई···।

रुक्मिनी : तूने उन्हें देखा था ?

जरा : वई वई वई—एओ···एओ ।

रुक्मिनी : बता उन्होंने क्या कहा था ?

जरा : ओ ओ ओ ।

साम्ब : मुझे देखते ही यह घायल बनैले सूअर की तरह चिंघाड़ने लगा। इसे जब पकड़ा, मुझे दांत से काटने की कोशिश की ।

[जरा झपटता है, जैसे किसी को दांत काटना चाहता है ।]

वभ्रु : ऐह ताक धिना धिन, ताक धिना धिन, ताता थेई···

साम्ब : कुछ कहना चाह रहा है ।

रुक्मिनी : नहीं···नहीं यह पागल है, विक्षिप्त है !

वभ्रु : सुनो उग्रसेन की मौत के बाद मैं लूंगा द्वारिका का राजसिंहासन, इसके लिए नगरवासियों के सामने मैं स्वयं जरा को प्राण-दंड दूंगा।

ले आओ इस ऊंट के बच्चे को···चल बे भालू···!

[जरा को खींचते हुए यदुवंशी ले जाते हैं।]

साम्ब : सरासर अत्याचार है, जरा को मैंने पकड़ा था ।

रुक्मिनी : दुर्गपाल ! सैनिक लेकर जाओ और जरा को छीन लो । जाओ, चुप खड़े क्यों हो ?

दुर्गपाल : क्षमा हो, महारानी ! दुर्ग में अब एक भी सैनिक नहीं, सारी सेना यहां से भागकर उन्हीं यदुवंशियों में जा मिली है ।

रुक्मिनी : क्या ?

साम्ब : जो सैनिक भोजवंशी थे, वे अब वभ्रु की सेना में हैं । जो शिनिवंशी थे, वे अब मेरे साथ हैं ।

रुक्मिनी : कृष्ण-रक्त के कलंक ! महाभारत के बाद कृष्ण ने अपनी नारायणी सेना को भंग करने का आदेश दिया था, पर तुम सब उस सेना को टुकड़ों में बांटकर उसी के सहारे राज्य-लिप्सा के युद्ध में डूब गये···मैं तुम लोगों का मुख नहीं देखना चाहती !

[रुक्मिनी परिचारिका-सहित भीतर

जाती है।]

दुर्गपाल : एक बात पूछूं राजकुमार, जरा को मारने के लिए तुम क्यों उसका पीछा कर रहे थे ?

साम्ब : यह कैसा प्रश्न ?

दुर्गपाल : रात के सन्नाटे में काल-समुद्र का जल जब चीत्कार करता है, तब ऐसा लगता है कि काले जल का एक कबंध दुर्ग की इन सीढ़ियों और मीनारों पर टहलने लगता है। तब यह दुर्ग कांपता है, और ये सीढ़ियां तब इस तरह डूबने-उतराने लगती हैं, जैसे वह समुद्र यहां तक बढ़ आया हो।

साम्ब : क्या ?

दुर्गपाल : मुझे लगता है, समुद्र का वह काला जल, सहस्र जिह्वाओं वाले सर्प की तरह इस दुर्ग में किसी को ढूंढ़ता है।

साम्ब : ढूंढ़ता है ?

दुर्गपाल : कृष्ण के पुत्रों को !

साम्ब : या केवल उसी प्रदुम्न को···जिसके अधर्म से···

दुर्गपाल : राजकुमार साम्ब, तुम भी ऐसा कहोगे ? तुम तो प्रदुम्न के प्रिय थे। सबसे पहले उसी प्रदुम्न ने ही सारे

यदुवंशियों में केवल तुम्हें पहचाना था—तुम्हारा मुख कृष्ण से मिलता है। तुम्हीं सोचो कृष्ण-मुख ! क्या वास्तव में प्रदुम्न ने अधर्म किया है ? बोलो, प्रेम अधर्म है क्या ?

साम्ब : पर धर्म से वेनुरती मां थी प्रदुम्न की !

दुर्गपाल : यह तुम बोल रहे हो, या नगर के वे लोग, वे यदुवंशी ?

[साम्ब चुप है।]

दुर्गपाल : तुम्हें पता है प्रदुम्न तब से इस नगर से आत्म-निर्वासित है। न जाने किन पहाड़ियों में अकेला···

साम्ब : वह अकेला क्यों है ? उसका सेनापति संगीकर उसके साथ है। इतनी दूर से वह संगीकर द्वारा यहां की राजनीति का संचालन करता है।

दुर्गपाल : कृष्णमुख होकर तुम··· !

साम्ब : उस कृष्ण से जोड़कर मुझे मत पुकारो। मेरा मुख उस कृष्ण से मिलता है, पर मैं वह कृष्ण नहीं, जिन्होंने अपने ही घर और वंश में फूट के बीज बोये। स्वयं थे महाभारत में पाण्डवों की ओर, और हमें नारायणी सेना बनाकर कौरवों की

ओर किया···।

दुर्गपाल : जीवन-रक्षा के लिए वह कृष्ण की मात्र एक राजनीति थी।

साम्ब : वह भयानक राजनीति कृष्ण द्वारा हमारे रक्त में घुल गयी।

दुर्गपाल : माध्यम वही इतिहास था, जिसे कृष्ण ने स्वीकार कर उसके भीतर से अपने व्यक्तित्व को ढूंढ़ा! तुम सब इसके विपरीत इतिहास से भाग निकले; तभी तुम्हें न अपना व्यक्तित्व मिला, न कोई इतिहास-दर्शन। मिला तुम्हें केवल अपना मूल्यहीन अहंकार···छोटे-छोटे क्रोध ···स्वार्थ···और उद्देश्यहीन विरोध।

साम्ब : हमारे वर्तमान को अपने भूत से इस तरह जोड़कर हमारा मज़ाक करना चाहते हो···?

दुर्गपाल : मैं हर वर्तमान को प्रणाम करता हूं, राजकुमार! पर कोई भी वर्तमान निरपेक्ष नहीं है। वह इतना छोटा, सीमित और सपाट भी नहीं है। इसे अपनी बृहत्तर अनुभूति का अंग बनाओ, फिर तुम्हें अपना निजी संदर्भ मिलेगा जैसे कृष्ण ने प्राप्त किया था, जैसे दुर्योधन और भीष्म

को प्राप्त हुआ था, जैसे···!

साम्ब : इन बड़े-बड़े नामों को मत लो मेरे सामने, नहीं तो मैं तुम्हारी हत्या कर दूंगा, हमारा इन नामों से केवल यही संदर्भ शेष है!

दुर्गपाल : वर्तमान···!

साम्ब : वर्तमान···केवल वर्तमान!

दुर्गपाल : पर क्या है वह वर्तमान?

साम्ब : जिसकी जड़ में वह सर्प की तरह बैठा है—जिसके अंग पर अब उसका पुत्र है।

दुर्गपाल : कृष्ण अब अतीत हैं। वर्तमान अब तुम हो। और वह प्रदुम्न भविष्य है। वह नया है। सूर्यमुख है। उसने इस अंधकार में प्रेम का एक नया मनवंतर शुरू किया है।

साम्ब : इस बात को यदि कोई सुनेगा, तो तेरी हत्या कर देगा।

दुर्गपाल : सोचता हूं क्रांति ही जीवन की रक्षा है, और यह प्रेम, वही क्रांति है!

साम्ब : प्रदुम्न में अपराध-भाव क्यों है?

दुर्गपाल : अपराध नहीं, संशय···

साम्ब : वह द्वारिका से आत्म-निर्वासित क्यों है?

दुर्गपाल : कारण हम सब हैं।

[पृष्ठभूमि में शोर उभरता है।]

दुर्गपाल : (बढ़ता हुआ)···ओह, जरा को बांधे हुए भोजवंशी नगर के चौराहे पर ले जा रहे हैं।

साम्ब : (आवेश में) मैं अभी वभ्रु से जरा को छीन लूंगा।

दुर्गपाल : रुको, इस पतन और विखराव को और हिंसा का रूप मत दो।

साम्ब : मुझे भी अपने अधिकार की चिंता है।

दुर्गपाल : कैसा अधिकार ?

साम्ब : अपना···!

दुर्गपाल : कृष्णमुख साम्ब, रुको !···रुको !

साम्ब : मेरे नाम से उस कृष्ण का नाम मत जोड़ो। कितनी बार कहूं, मुझे कृष्ण से घृणा है।

दुर्गपाल : और अपने से ?

[पृष्ठभूमि का कोलाहल बहुत बढ़ गया है। साम्ब तेजी से बाहर दौड़ता है। दुर्गपाल साम्ब को पुकारता रह जाता है।]

दुर्गपाल : हे अंतरिक्ष के देवताओ ! प्रकाश करो। अपने ही द्वारा अपनी हिंसा करने वाले इन पुरुषों को रोको।

आकाश के महा देवताओं ! जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरे की हत्या करता है, आओ, उन्हें दंड दो ! बचाओ इस डूबती नगरी को..., बचाओ !

दूसरा दृश्य

स्थान : नागकुंड की पहाड़ी।
समय : रात का दूसरा पहर।
[दो सैनिक पहरे पर खड़े हैं।]

पहला : हम के बदे इहां पहरा दै रहे हैं ?

दूसरा : अरे मालिक, परेम बदे ! ···राजा करे परेम, परजा पहरा दे !

पहला : हम कोई परजा हैं, हम भी तो यदुवंशी हैं ! नाहीं गये महाभारत लड़ने तो का भवा ?

दूसरा : वही शिखण्डी वाला महाभारत ? (हंसता है) सच हम महाभारत लड़न गये होते, तो शिखण्डी से ब्याह कै लेते !

पहला : हां भैया ! ना मिली वेनुरती, शिखण्डी ही सही, और ठीक भी है, अंतर ही का है ? (दोनों चुपचाप टहलते हैं) हाय रे हाय, हम हैं परेम के पहरेदार ! ···

पहला : समझ में नाहीं आवत परेम भया द्वारिका मा, और ये पूत आय छिपे पहाड़िन मा। उहै मसल है, आग जले पुरन्दरपुर और खिचड़ी पके छछुंदरपुर।

[टहलते हैं।]

दूसरा : द्वारिका मा साम्ब और वभ्रु भी तो आपन-आपन खिचड़ी पकावत हैं।

पहला : द्वारिका के राजसिंहासन की लड़ाई मा हमें केकरे ओर से लड़ैक चाही ?

दूसरा : हम तो भैया सीधे लूटमार करब। दसो अंगुरी घी मा।

पहला : मुला हम तो इहां रहिकै ना घर में ना घाट में। द्वारिका में होइत तो अब तक मालामाल ह्वैगे होइत। अउर दुइ-चार सुंदरियां भी···गजब रे गजब !

दूसरा : जो भी हो वभ्रु तो है मरद आदमी··· अउर साम्ब है शिखण्डी। अउर प्रदुम्न ?

[हंसते हैं।]

पहला : ऐ, धीरे धीरे।

दूसरा : प्रदुम्न हैं असली राजकुमार। सिंहासन के उत्तराधिकारी। पर थोड़ा दब्बू हैं।

पहला : परेमी है परेमी, आखिर कृष्ण के ही

तो बड़े पूत हैं।

[दोनों हंसते हैं।]

दूसरा : अरे भइया, हंसें या रोवैं त्रिया चरित्तम् पुरुषस्य भाग्यम्…

[पृष्ठभूमि से कोई प्रद्युम्न का नाम लेकर पुकार रहा है।]

पहला : परेम भी किया तो किससे !

दूसरा : भई, अपनी-अपनी पसंद है।

पहला : पता नहीं कौन है ससुरा, भैंसा माफ़िक चिल्लाई रहा है, भेअं-भेअं! (रुककर) अरे कभी वेनुरती को देखा भी है ?

दूसरा : दूसरे का माल हम नांहीं देखित, हां। एक हमर्यो है, हां, बड़ी मारू है राजा! जैसे शक्कर की डली। गुलाब की कली, तलवार की फली…।

पहला : अरे परेम करती है ?

दूसरा : परेम…फिअ !…फिअ (हंतसा है) हम एसन मेहरा नाहिंन ना, की परेम करी।…अरे मूल बात है जवानी। वही मसल है, चार दिन की चांदनी…!

पहला : (बढ़ता हुआ) ई कौन है ससुरा, कपार पै आइकै पर्र,पर्र चिल्लाइ रहा है… अरे ई तो कौनो मर्द आइ रहा है ? मर ससुरा…।

दूसरा : अउर का इहां कौनो औरत आयी ?

[दोनों हंसते हैं। व्यासपुत्र का प्रवेश।]

पहला : कौन ?

दूसरा : बोलता क्यों नहीं, कुचुर-कुचुर का ताक रहा है ?

व्यासपुत्र : व्यासपुत्र !

पहला : व्यासपुत्र…पुत्री क्यों नहीं ?

[दोनों हंसते हैं।]

व्यासपुत्र : यही है प्रद्युम्न का निवास ?

पहला : मतलब का है ?

व्यासपुत्र : मिलने आया हूं।

पहला : मिलने आये हैं ! कुछ माल-मसाला भी लाये हो ?…हाथ ऊपर तो उठाओ…अब कमर पर…आये ! ओए !

दूसरा : कुछ माल मसाला नाहीं लाये ?

पहला : बड़े आये मिलने !

[व्यासपुत्र घबड़ाया खड़ा है, तभी भीतर से प्रद्युम्न का प्रवेश। दोनों सैनिक बाहर चले जाते हैं।]

व्यासपुत्र : महाराजकुमार प्रद्युम्न !

प्रद्युम्न : व्यासपुत्र !

व्यासपुत्र : जय हो !

प्रद्युम्न : इधर कैसे आना हुआ ?

व्यासपुत्र : द्वारिका की दशा बड़ी चिंताजनक

है। वह पतन के कगार पर खड़ी है।

प्रदुम्न : मनुष्य की तरह बोलो !

व्यासपुत्र : दक्षिण दिशा से समुद्र बढ़ता चला आ रहा है, पर उसे रोकने का कोई प्रयत्न नहीं। नगर में रोगियों, गुंडों और भिखारियों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि राह चलना कठिन है। वस्तुओं के दाम इतने बढ़ गये हैं कि मनुष्य अपने को बेचकर भी उन्हें नहीं खरीद पाता। राजा उग्रसेन मृत्युशय्या पर पड़े हैं। वभ्रु और साम्ब सिंहासन के लिए लड़ रहे हैं। सारी नारायणी सेना अलग-अलग वंशों, दलों, शिविरों में बंटकर हिंसा, लूट और व्यभिचार में डूबी है ! (रुककर) निश्चय ही यह महाकाल का कोप है, और लोगों का विश्वास है, इसके मूल में तुम्हारा वही पाप-कर्म है···

प्रदुम्न : अपने निजी विश्वास की बातें करो।

व्यासपुत्र : मेरे विश्वास तुम हो ! बिखरती हुई द्वारिका को केवल तुम्हीं बचा सकते हो ! इसके लिए तुम्हें वेनुरती को त्यागना होगा।

[प्रदुम्न चुप है।]

व्यासपुत्र : कल्याण इसी में है कि तुम उस वेनुरती को छोड़ दो, जिसके लिए इस तरह तुमने अपना नगर, नाम, पद और सम्मान सब कुछ त्यागा है !

प्रदुम्न : तुम द्वारिका से लौटकर यहां आये हो ?

व्यासपुत्र : तुम्हें फिर से विचार करना होगा !

प्रदुम्न : मैं सब कुछ विचार कर अनुभूति के मार्ग से यहां पहुंचा हूं !

व्यासपुत्र : यह सर्वथा अमंगल है।

प्रदुम्न : तुम मनुष्य नहीं, केवल इतिहासकार हो !

व्यासपुत्र : वभ्रु और अन्य यदुवंशी हत्या के लिए तुम्हें ढूंढ़ रहे हैं, कारण वही वेनुरती है ! उसे त्यागकर सारी समस्या का अंत करो !

प्रदुम्न : जीवन का सरलीकरण करके समस्याओं का समाधान तुम-जैसे इतिहासकार ही करते हैं ! जीवन इतना सरल नहीं है। (रुककर) सभी सोचते हैं, सारा कारण अकेली वही वेनुरती है, पर सच यह है कि मूल मैं हूं। और मेरे इस प्रत्यक्ष मूल में भी पता नहीं और कितना क्या-क्या है। एक द्वारिका समुद्र तट पर,

दूसरी द्वारिका मेरे भीतर, मन के भयानक समुद्र में डूबती हुई !

[निस्तब्धता खिंच जाती है।]

व्यासपुत्र : तुम द्वारिका में वापिस नहीं जाओगे। इन्हीं अंधी पहाड़ियों में घूमते रहोगे और उधर द्वारिका उस काल-समुद्र में डूबती जायेगी। यह सब इतना केवल एक स्त्री के लिए !

प्रद्युम्न : आओ, मैं तुम्हें दिखाता हूं, व्यासपुत्र! जो पहाड़ियां तुम्हारे लिए अंधी हैं···देखो, इनमें बिना बादल के हर क्षण बिजली चमकती है—बादल गरजते हैं, बिना मेघ वर्षा होती है और मेरी शत-शत द्वारिका यहां हर क्षण डूबती है।

व्यासपुत्र : विक्षिप्त हो गये हो !

प्रद्युम्न : तुम···केवल तुम सब···वरना मैं द्वारिका से आत्म-निर्वासित नहीं होता। जो मानवीय है, सहज है, वह दंडित नहीं होता !

व्यासपुत्र : मैं अब जाऊंगा।···यहां अब एक क्षण भी और रहना मेरे लिए असह्य है।

प्रद्युम्न : सावधान ! यदुवंशियों को मेरे इस स्थान का पता नहीं दोगे !

[तेजी से प्रद्युम्न का भीतर प्रवेश।

व्यासपुत्र इधर-उधर देखता है, फिर तेजी से बाहर निकल जाता है। दोनों सैनिक फिर आते हैं।]

पहला : हेअ चलो इसे लूट लें !

दूसरा : हां, बड़ा अच्छा मौका है, जाने न पाये।

पहला : मैं पीछे से वार करूंगा, तू लूटना शुरू कर देना। (दोनों बढ़ते हैं) इधर से, इधर से, ब्राह्मण है तो का, दया मत दिखाना, हां···सावधान !

[दोनों बढ़ते हैं पर सहसा घूम पड़ते हैं।]

दूसरा : अरे ! कोई रथ चला आइ रहा है।

पहला : साथ मा सेना चालक संगीकर भी हैं।

दूसरा : हाय रथ मा से कौनो स्त्री निकल रही है। गजब्बा रे गजब्बा !

पहला : (आश्चर्य से) वेनुरती !

दूसरा : अब का होई ?

पहला : राति भर अब सोवै के मिली।

दूसरा : हां, अब इन पहाड़िन पर बिजली के चमकब बंद ह्वै जाई।

[बाहर से संगीकर का प्रवेश। सैनिक सावधान हो जाते हैं। भीतर से प्रद्युम्न का प्रवेश।]

संगीकर : महाराज, क्षमा हो, देवी वेनुरती पधारी हैं।

प्रदुम्न : वेनु !

[बढ़कर वेनुरती का स्वागत करता है। दोनों सैनिक बाहर चले जाते हैं।]

संगीकर : मैंने इन्हें बहुत समझाया पर ये नहीं मानीं।

वेनुरती : मेरा यहां आना उतना ही आवश्यक था···

संगीकर : क्षमा हो, आपको अनुमान नहीं, आपने क्या किया है !

प्रदुम्न : संगीकर ! वेनु को सहसा इस तरह पाकर अब और कुछ नहीं सुनना चाहता।

संगीकर : द्वारिका की क्या दशा है, कितना आपका विरोध है, इसका आपको अनुमान नहीं !

वेनुरती : मैं यहां आने को विवश थी।

संगीकर : पर इस विवशता का फल सामने है! यदुवंशियों ने रथ को उधर आते देख लिया है। अब यहां रहना सुरक्षित नहीं।

[संगीकर दुःख से एक ओर चला जाता है।]

वेनुरती : महल में जैसे ही यह पता चला, व्यासपुत्र तुमसे मिलने गया है, मैं डर गयी। वह द्वारिका में जब से

आया है, सदा दो तरह की बातें करता है।

प्रदुम्न : वेनु !

वेनुरती : मेरे प्राण! अब तुम्हें यहां से द्वारिका लौटना होगा, व्यासपुत्र द्वारिका में पहुंचते ही यदुवंशियों को यहां का पता बतायेगा। चलो मेरे संग द्वारिका !

प्रदुम्न : द्वारिका ?

वेनुरती : नगर में जरा को पकड़कर लाया गया है। साम्ब और वभ्रु दोनों अपने स्वार्थ के लिए जरा की हत्या करना चाहते हैं।

प्रदुम्न : हत्या !

वेनुरती : हत्या और विनाश के अलावा अब द्वारिका में बचा ही क्या है, यही देखने के लिए नगर में तुम्हें वापस चलना होगा। रचना करनी होगी उस शक्ति की, जो यह सिद्ध करेगी कि हमारा प्रेम जीवनधर्मा, निष्कलंक है। (रुककर) दिन-रात उस नगर में तुम्हारे बिना मैं भयभीत रहती हूं, जो केवल एक स्त्री का भय है !

प्रदुम्न : मुझे भी वे सारे भय यहां बेधते हैं,

जो केवल एक पुरुष के भय हैं।

वेनुरती : चलो, अपनी द्वारिका में प्रकट हो। तुम्हारे इस मुख को देखने के लिए अंधकार में छिपे हुए देवता रास्ता देख रहे हैं। महाभारत और प्रभास क्षेत्र के युद्ध में अकारण मरे हुए यदुवंशियों की वे असंख्य आत्माएं तुम्हें निहार रही हैं।

प्रदुम्न : नहीं! मैं और युद्ध नहीं लड़ सकता।

वेनुरती : मेरे सूर्य को इन पहाड़ियों से बाहर आना ही होगा। सारी द्वारिका हमारे विरुद्ध षड्यंत्र रच रही है। उठो, उन्हें चुनौती दो, ताकि हमारे अस्तित्व को अर्थ मिल सके। तुम्हें केवल द्वारिका में प्रकट होना है; फिर सारे अप्रकट तुम्हारे साथ होंगे। तुम गरुड़ की तरह यहां से उड़ो, मैं गरुड़ी की तरह तुम्हारे पंख में समाकर इस अंधेरे आकाश को उषा-रंजित करूंगी। इन पहाड़ियों पर कौंधती हुई बिजली के तिनकों से उस नगर में घोंसला बनाऊंगी, जहां हमारे असंख्य शिशु पंख खोलेंगे।

[संगीकर प्रकट होता है। वेनुरती सहम-सी जाती है।]

संगीकर : अभी कविता खत्म हुई कि नहीं (रुककर) महाराज, ये बातें सुनते-सुनते अब ऊब गया हूं।

वेनुरती : तुम्हें पता है कि तुम क्या कह रहे हो?

संगीकर : काश, मुझे कुछ न पता होता।

[मौन]

प्रदुम्न : तुम बड़े उदास लग रहे हो, क्या बात है?

संगीकर : मैं आपको सावधान करता हूं, आप एक ऐसे अंधेरे जंगल में फंसते जा रहे हैं जिसका कोई अंत नहीं।

प्रदुम्न : संगीकर!

वेनुरती : मैं कहती हूं, तुम्हें मर्यादा में…!

संगीकर : मर्यादा…मर्यादा…केवल प्रेम की बातों से कहीं कुछ नहीं होता। सच्चाई से भागने का इससे और कोई अच्छा बहाना नहीं। आपको पता नहीं, द्वारिका में आपके खिलाफ क्या रचा जा रहा है। व्यासपुत्र वहां पहुंचकर क्या करेगा। कृष्ण क्या थे, वेनुरती क्या है, आप क्या हैं? वही…प्रेम, प्रेम…देश के सामने यह प्रेम कुछ नहीं है।

प्रदुम्न : बस, बस! (एक सन्नाटा खिंच जाता है) मैं अब द्वारिका वापस चलूंगा।

संगीकर : जैसी आपकी इच्छा।

[वेनुरती को संग लिये हुए प्रदुम्न का प्रस्थान। संगीकर चुप खड़ा है। फिर तेजी से वह भी उसी दिशा में चला जाता है। दोनों सैनिक आते हैं।]

पहला : यह क्या हुआ ?

दूसरा : हुआ क्या?

पहला : (देखता हुआ) सब चले गये ?

दूसरा : बस, जा ही रहे हैं।

पहला : हमें तो कोई हुक्म ही न मिला।

दूसरा : मुझे तो मिला···ये देख, इतना माल भीतर से मारि ले आया। लूटा मेरे प्यारे···।

पहला : मैं द्वारिका में पहुंचकर लूटूंगा।

दूसरा : लोग जाइ रहे हैं। वो बैठी रथ पर, अब वो बैठा, परेमी !

[विनोदपूर्ण हंसी]

पहला : वो है पीछे-पीछे सेनापति। देखो न हमें कोई हुक्म ही न मिला !

दूसरा : हुक्म मैं देता हूं—द्वारिका चल !

पहला : लूटपाट कर !

दूसरा : सेनापति बड़ा ईमानदार बनता है !

पहला : कैसे बोलता है !

दूसरा : हम सेनापति होईत तो ऐसेन मौज करित कि बस···!

पहला : अरे मौज तो वेनुरती कै रही ! कैसे आयी और कैसे गयी—जैसे बिजुरी चमकी हो !

दूसरा : एक बात अउर, रुक्मिनी के आगे वेनुरती को केउ घास नाहीं डालत। मुला किसमत की बात है···।

पहला : हां, अब फांस कै लै गई द्वारिका, यदुवंशियों से लड़ायेगी। जीता तो महारानी, हारा तो देवरानी।

[दोनों हंसते हैं।]

दूसरा : हम किसकी ओर से लड़ेंगे ?

पहला : अपनी ओर से।

दूसरा : पर किसकी सेना में रहेंगे ?

पहला : ऐसा क्यों न करें, हम पंचन भी अपना अलग दल बना लें। जिधर जीत होने लगे उधर जाय मिलें।

[हंसते हैं।]

दूसरा : और लड़ाई में मारे गये तो ?

पहला : अरे जब अपना अलग दल बनायेंगे तो हम क्यों लड़ेंगे ? हमारे सिपाही लड़ेंगे। हमारे हुकुम से लड़ेंगे। हम सेनापति होंगे !

[दोनों विनोदपूर्ण हंसी हंसने में मस्त हो जाते हैं।]

तीसरा दृश्य

स्थान : वही राजदुर्ग।

समय : संध्या।

[दृश्य में एक ओर से गाते हुए सारे भिखारी आते हैं, और गाते हुए इधर-उधर बैठ जाते हैं।]

आजु मोरा राजा बिकै है कोई ले लो।
दो सौ में ले लो, सौ में ले लो
जिया जरि जाय पचासेइ में ले लो।

पतोला : (अकेले)
अरे, जिया जरि जाय दुवन्नी में ले लो!
दुवन्नी में ले लो, इकन्नी में ले लो।

सब : (एक साथ)
जिया जरि जाय मुफ्त में ले लो
आजु मोरा राजा बिकै है कोई ले लो!

[दूसरी तरफ से व्यासपुत्र आता है और भिखारियों का गीत टूट जाता है।]

व्यासपुत्र : सावधान! तुम्हारे नगर में वह प्रद्युम्न आ गया है, जो सबका दुश्मन है। जिसके पाप के कारण इस नगर पर इतना बड़ा प्रकोप हुआ है। जिसके कारण तुम सब भिखारी हुए। द्वारिका का इतना नाश हुआ!

हारिक : हेअ, मुंह कैसो फार्रहो!

देवक : अयं, का कहो?

पतोला : अयं पै हाथ धरो, औ मुंह से बात करो।

विलोमन : ई! ऊंची-ऊंची बात अपन घर मा रखो। हमै चाही रोटी, रोटी, रोटी…।

व्यासपुत्र : हां-हां, उस रोटी के लिए तुममें एकता चाहिए। तुम्हें अपने शत्रु को पहचानना चाहिए। तुम लोग भिखारी नहीं, इंसान हो। तुम सबमें वो शक्ति है जिससे द्वारिका में क्रान्ति हो सकती है।

विलोमन : (गुस्सेसे) ऐ बड़ो भड़भड़िया है।

विदूरथ : हमसों राजनीति करन आयो है!

देवक : देखो, हमसों सांची बात करो।

व्यासपुत्र : मैं सौगंध खाकर कहता हूं…तुम सबकी भलाई की बात कर रहा

हूं। मैं तुम्हारा अपना हूं, तुम्हारी समस्या का समाधान मेरे पास है। आओ, मेरे संग चलो। आओ, चलो, घेर लो प्रदुम्न को।

पतोला : क्या ?

हारिक : इसकी भाषा सुनो !

[सब हंसते हैं। व्यासपुत्र गुस्से से जाने लगता है।]

अघू : खुद थूक के हमें चटाने आये हैं।

हारिक : हमारी विपत्ति से राजनीति करन आयो है ?

[व्यासपुत्र तेज़ी से चला जाता है। क्षण-भर बाद दूसरी ओर से वभ्रु का प्रवेश। साथ ही जरा को बंदी बनाए हुए दो सैनिक आते हैं।]

वभ्रु : देखो ! ये है वो जरा ! साम्ब को हराकर इसे मैंने छीन लिया। देखो, यही है वह हत्यारा !

[जरा वनमानुष की तरह चेष्टाएं करने लगता है। सारे भिखारी आश्चर्य से घेर कर उसे निहारने लगते हैं। जरा जिसकी ओर बढ़ता है वह डर कर चीख पड़ता है।]

पतोला : मारौ धस्स से गिरि परै।

वभ्रु : देखो कैसी दीद्दा फारि फारि घूरै !

हारिक : भींचि देउ सारे कौ। याही ने कृष्ण

को मार्‌यो।

विलोमन : मार घैंचा।

देवक : तुमऊ यार, बेमतलब धकापेल मचाइ रह्यो हो। जा में या को का दोष। जैसे हम सब भिखारी वैसे ई जरा। देखो न आदमी से जानवर लगि रह्यो है।

वभ्रु : हां, हां, यह जंगल का आदमी है। बोलता है (घूमकर) चल, बोल कृष्ण ने मरते समय क्या कहा था। यही न, 'मेरे मरने के बाद महाराज कुमार वभ्रु द्वारिका के राजा हों।'

[दूसरी ओर से साम्ब का प्रवेश।]

वभ्रु : देखो ये आ गये ! लोग कहते हैं इनका मुख कृष्ण से मिलता है, पर मैं कहता हूं इसका मुख स्त्रियों जैसा है।

साम्ब : मुक्त करो जरा को।

वभ्रु : बता कृष्ण ने मरते समय क्या कहा था ?

[जरा भयभीत पशु की भाषा में कुछ बोलने का प्रयत्न करता है।]

साम्ब : यह पहले बोलता था, अब इसे क्या हो गया ?

वभ्रु : इसने किसी सुंदरी का मुख देख

लिया होगा !

[जरा अजीब ढंग से हंसता है।]

वभ्रु : बस, बस, बस।

साम्ब : मैं भी इससे सुनने आया हूं, कृष्ण ने मरते समय क्या कहा था ?

हारिक : क्या जे बोले भी है ?

देवक : याकी आंखिन से तो लहू टपक रह्यो है।

शेष भिखारी : बोल भाई बोल, बोल भाई !

जरा : ईया ऊ हू हू हू·····इयाह·····ई··· क्रि···।

[भिखारी आपस में बातें करने लगते हैं।]

विलोमन : जे तो विक्षिप्त···।

अघू : वभ्रु ने याको बहुत मारो है।

वभ्रु : हां-हां, मारो है! (बढ़ता हुआ) क्यों रे भालू, नाचेगा—ता ता धिन ?

[जरा पर प्रहार करना चाहता है। साम्ब बीच में आ जाता है। जरा भिखारियों के बीच जा छिपता है। बाहर से व्यासपुत्र का तेजी से प्रवेश।]

व्यासपुत्र : यह समय, इस तरह आपस में लड़ने का नहीं। सबका शत्रु प्रदुम्न नगर में ही नहीं, बल्कि राजमहल में भी आ गया है। तुम सब मिलकर उसे

बंदी करो, और डूबती हुई द्वारिका को बचा लो।

पतोला : संभालो···अब फिर सुनो इसका भाखन।

विदूरथ : देखो न, आंखिन देखो !

साम्ब : जरा को बंदी बनाकर मैं ले आया नगर में, इस पर मेरा अधिकार है।

वभ्रु : पर अब ये है मेरे अधिकार में !

व्यासपुत्र : सुनो-सुनो मेरी बात, इतिहास का वह क्षण आ गया। एक युग तुम्हारे सामने है···एक युग तुम्हारे पीछे··· एक है भूत, एक है वर्तमान।

वभ्रु : इतिहास, वर्तमान, भूत, जरा मुझे बता तेरी समझ में क्या आया ?

व्यासपुत्र : इतिहास का क्षण बीतने न पाये। सब एक होकर प्रदुम्न को अकेला कर दो। मेरे पास एक योजना है। मैं अभी प्रदुम्न के पास जाकर एक सूचना दूंगा, यदुवंशी जरा की हत्या कर रहे हैं। वह दौड़ा हुआ यहां आयेगा। तुम सब मिलकर उसे घेर लेना, फिर जो चाहे करना।

वभ्रु : क्या यह इतना आसान है ?

व्यासपुत्र : यहां उसका कोई भी समर्थक नहीं, और मैं उसे यहां बातों में फंसा कर

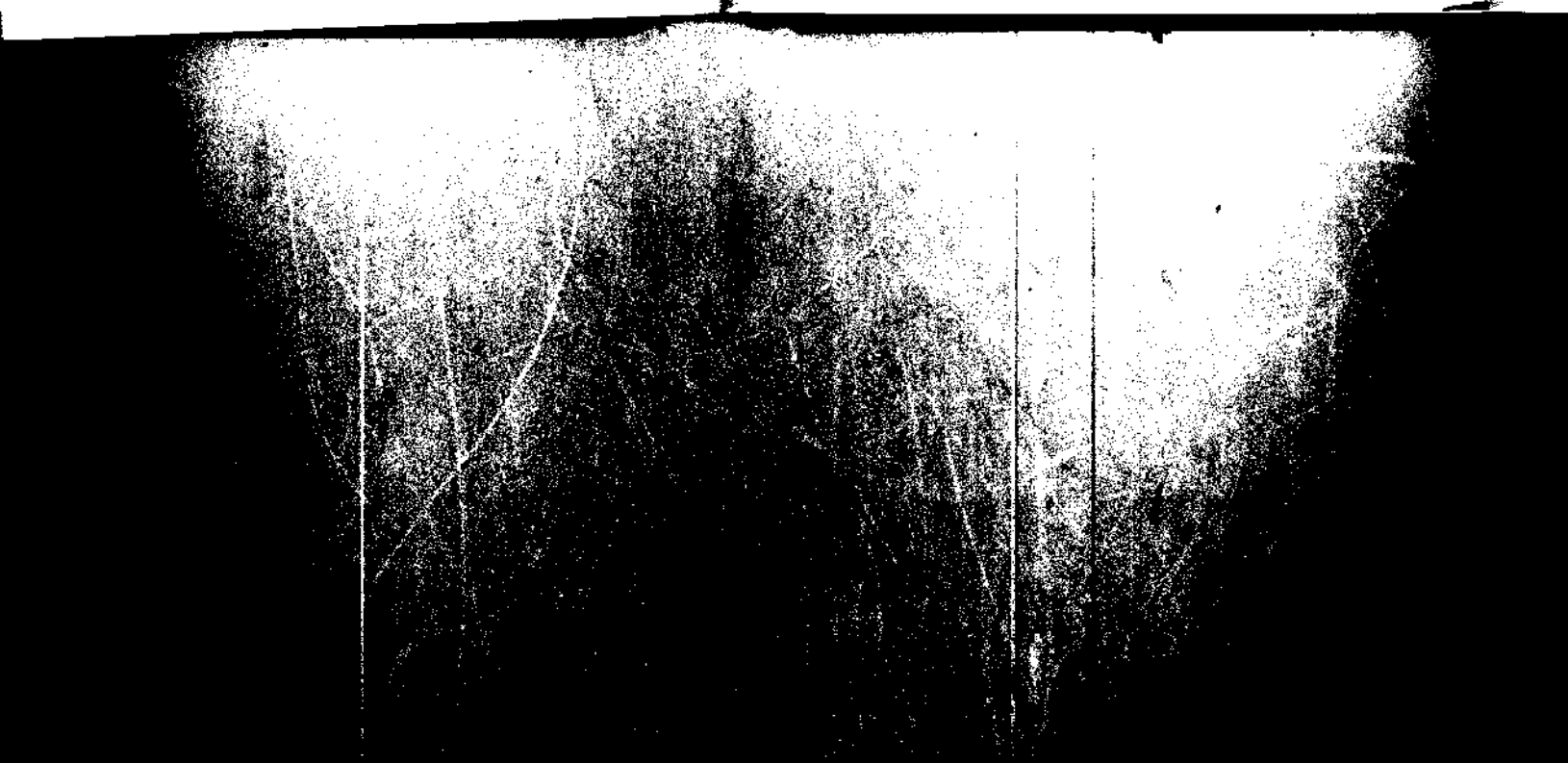

अकेला ले आऊंगा।

साम्ब : प्रदुम्न की एक पुकार सुनते हो वेनुरती यहां दौड़ी आयेगी।

व्यासपुत्र : उसके लिए भी एक ऐसा प्रबन्ध करता हूं कि वेनुरती भी यहां न आ सके। इसका फल होगा, प्रदुम्न अपने आपको यहां अकेला ही नहीं, वेनुरती से भी अपने को टूटा हुआ पायेगा। चलो जरा को मारने, इसे प्राण-दण्ड देने का अभिनय शुरू करो···समय आ गया है।

[व्यासपुत्र तेजी से अन्दर जाता है। यदुवंशी वभ्रु जरा को मारने का अभिनय करते हैं। पर साम्ब और भिखारी इस अभिनय में भाग नहीं लेते। जरा डरा हुआ इधर-उधर भाग रहा है। वभ्रु और यदुवंशी उसे तरह-तरह से यातना दे रहे हैं। यकायक वभ्रु जरा को गले से पकड़ लेता है। उसी समय भीतर से व्यासपुत्र के साथ प्रदुम्न का प्रवेश।]

व्यासपुत्र : (चिल्लाता हुआ) बचाओ, जरा को बचाओ।

[प्रदुम्न निहत्था सबके बीच में घिर जाता है। सब लोग कृपाण खींचकर आक्रमण करने को होते हैं।]

व्यासपुत्र : नहीं-नहीं, यह अपने हैं।

प्रदुम्न : यह विश्वासघात है! (पुकारता है) वेनुरती, वेनु···!

व्यासपुत्र : देखिए न वेनुरती भी आपकी सहायता में नहीं आयी। लगता है ये सब लोग वेनुरती से मिले हुए हैं। इसीलिए वह आपको फंसाकर नगर में ले आयी है।

प्रदुम्न : नहीं-नहीं, यह झूठ है।

[उसी समय बाहर से संगीकर सैनिकों सहित प्रवेश करता है। मुठभेड़ होती है। प्रदुम्न जरा को मुक्त करता है।]

प्रदुम्न : (पुकारता है) दुर्गपाल!

[दुर्गपाल आता है।]

प्रदुम्न : जरा अब हमारी रक्षा में रहेगा। इसे ले जाओ।

वभ्रु : और तुम अपनी उसी की गोद में जाकर सो जाओ जो तेरी पुकार पर भी यहां नहीं आयी!

[जरा को लिये हुए दुर्गपाल और संगीकर अंदर जाते हैं।]

प्रदुम्न : कौन लोग हो तुम?

पतोला : आंख फूटी है का?

वभ्रु : ये भिखमंगे हैं!

हारिक : क्या कहा?

विदूरथ : घेर लो !

[भिखारी आवेश में बढ़ते हैं। वभ्रु, साम्ब व्यासपुत्र सभी भाग जाते हैं।]

प्रदुम्न : बस-बस, क्षमा करो उन्हें। तुम सब पूज्य हो ! तुम सब यदुवंशी हो।

विलोमन : थू:-थू: हम पूज्य हैं ! अब जे चले हैं हमसों राजनीत की भाषा बोलने।

प्रदुम्न : राजनीति की भाषा ? ऐसा तुम लोग भी कहोगे !

देवक : सारा कुछ हमी भोगें।

हारिक : हमें उल्लू बनाय सब राजनीति खेलें! कोऊ राजा बने हेतु, कोऊ सत्ताधारी बने हेतु, कोऊ सुंदरी चाहन हेतु, कोऊ धन-दौलत चाहन हेतु···हां-हां, हमें कोऊ ना चाहत···।

विदूरथ : तब तुम कहां थे जब इहां स्वर्णकारों के हाथ काटे गये।

देवक : तब तुम थे कहां, जब यदुवंशियों ने हमारी किसी फूंक दीनी। घर लूट लीनो।

अघू : काल समुंदर ने सब कुछ निगल लीनो, घर-परिवार-कुटुम्ब सब जल समाधि लीनो, हां-हां, जल समाधि लीनो।

हारिक : देखो, हम हैं मछुआरा···हमार पूरो वंश मरि-मिट गयो···कहां थे तुम,

द्वारिका से भाग कर। तुम्हें थी केवल अपनी जान प्यारी···थू···!

विलोमन : विश्वास था यदुवंशियों में तुम्हीं थे एक लायक, पर तुमने भी हमार संग विश्वासघात कीन्हों। एक औरत···प्रथम मिलन में प्रेम ! वाके अलावा और सब कुछ झूठो ?

प्रदुम्न : सुनो-सुनो, मेरी बात भी तो सुनो !

पतोला : का सुनें, तिहारी परेम कथा। वही तिहारो परेम, हमारो सत्यानाश कारन।

विदूरथ : हम क्षमा करें ! हम पूज्य !

सब भिखारी : (एकसाथ) दो हमारो घर, हमारो किसी, दो हमारो परिवार···दो हमारो व्यवसाय, जीविका···!

देवक : हमसों कोऊ मतलब नाय! कोउ बने इहां का राजा-महाराजा। कोऊ करे चाहे काहू सों परेम ! काहू सों घृना !

पतोला : कोऊ जिये चाहे मरै !

[सब भिखारियों ने प्रदुम्न को घेर लिया है।]

प्रदुम्न : मैं तुम सबके सामने नत-सिर हूं। तुम्हारे लिए ही इस नगर में आया हूं।

पतोला : अब संभालो !

हारिक : चलो, नाहीं तो जे भी भाषण देन लगेंगे !

[सब बड़बड़ाते हुए जाते हैं। दूसरी ओर जरा दिखाई पड़ता है।]

प्रदुम्न : ओह, मैं तेरे पास ही आ रहा था ! डरो नहीं। बोलने की कोशिश करो···बोलो···हां-हां, बोलो···

[जरा संकेत करता है कि 'तुम कौन हो ?')

प्रदुम्न : मैं कौन हूं···तू ही बता, मैं कौन हूं ?

जरा : कि कि कि कि कृष्ण···।

प्रदुम्न : हां-हां, बोल, कृष्ण ने तुझसे क्या कहा था ?

जरा : कृष्ण, ईयाही हू हू हू क्रि···क्री···।

प्रदुम्न : खबरदार, कृष्ण के बारे में कोई भी अपमानजनक शब्द अपने मुंह से नहीं निकाल सकता।

जरा : तुत तुत तुत, प्रदुन प्रदुन ?

प्रदुम्न : हां-हां, मैं ही प्रदुम्न हूं, बोलो, बोलो !

जरा : (डर जाता है) ई ही ही ही हू हू हू। यही ना···म्···लेकर हू हू कृष्ण ने···

[बांसुरी तोड़ने का अभिनय करता है।]

प्रदुम्न : उनकी मर्यादा के विरुद्ध मैं एक भी

शब्द नहीं सुनना चाहता।

जरा : पप्प पप्प पप्प तुम्हारा···नाम लेकर वो···।

प्रदुम्न : हां-हां···।

जरा : प्रदुम्न औ औ औ वेनुरती।

[यह कहते हुए जरा भागने लगता है। प्रदुम्न बढ़कर उसे पकड़ लेता है। पृष्ठभूमि से वृद्ध गाता हुआ आता है।]

धरम दुर्‌यो कलिराज दिखाई।
कीन्हों प्रकट प्रताप आपुनो;
सब विपरीत चलाई
धरम दुर्‌यो कलिराज दिखाई।

[वृद्ध को आते देखकर प्रदुम्न जरा को पकड़े हुए अदृश्य हो जाता है। दूसरी ओर से वृद्ध के पास व्यासपुत्र आता है।]

व्यासपुत्र : हेअ तू, इस तरह क्या गा रहा है ? तुझे पता नहीं प्रदुम्न ने आकर नगर का कितना सत्यानाश किया है।

वृद्ध : हे भाई, तू कौन है ? कहां से टपक पड़ा ?

व्यासपुत्र : आश्चर्य है, मुझे नहीं जानता, मैं हूं व्यासपुत्र।

वृद्ध : ओ हो हो तो तुम ही हो वो···सुना है तुम इस नगर में इतिहास लिखने

का कुछ मसाला ढूंढ़ने आये हो। क्या-क्या बटोरा अब तक···।

व्यासपुत्र : ये तुझे कैसे पता चला ?

वृद्ध : मुझे सब पता है, यही मेरा काम है, सबका मर्म ढूंढ़ते रहना। (हंसता है) तुमने द्वारिका में आकर इस गंदले पानी में जो जाल फेंका है। तो मुझे लगा कोई पुराना मछली का शिकारी आ गया···जय हो।

व्यासपुत्र : अरे तू, किस दुनिया में है, जिस नगर में इतना बड़ा पाप हुआ हो और पापी नगर में आकर रहने लगा हो, वहां तुम सबको यह चाहिए कि जब तक उस पापी का सत्यानाश न हो तुम सब चैन न लो।

वृद्ध : तुम्हारे इतिहास में कहीं गीत का भी स्थान होगा या इसी तरह का निरा बकवास होगा ?

व्यासपुत्र : मैं कहता हूं सावधान हो जा। ऐसा समय मनुष्य को बार-बार नहीं मिलता। तू अपने समय का स्वामी बन। अपने धर्म को पहचान। प्रद्युम्न ने इस नगर में जो कुछ किया है वह भयानक है।

[वृद्ध तेजी से हंस रहा है। व्यासपुत्र

हारकर चला जाता है। वृद्ध वहीं सीढ़ियों पर बैठकर गाने लगता है। भीतर से रुक्मिनी आकर चुपचाप उस गीत को सुनती है।]

जब यदुवंश कृष्ण अवतारा
होइहि हरन महामहि भारा···
कृष्ण तनय होइहें पति तोरा
बचन अन्यथा जाइ न मोरा।।

रुक्मिनी : कौन हो तुम ?

वृद्ध : जय हो महारानी, मैं आपकी प्रजा हूं। आप द्वारिका की रक्षा कीजिए। काल-समुद्र का वेग हर दिन और भयानक होता जा रहा है। उसको रोकने वाला केवल आपका पुत्र प्रद्युम्न है।

रुक्मिनी : मत लो उसका नाम।

वृद्ध : विश्वास कीजिए, वही अकेला है जो इस नगर को बचा सके। यदुवंशियों ने सबको उसके खिलाफ कर रक्खा है। व्यासपुत्र इस आग में तेल डालने का काम कर रहा है।

रुक्मिनी : अच्छा है।

वृद्ध : सारे यदुवंशी कहते हैं, हमने महाभारत का युद्ध लड़ा है, और अब हमारे भोग करने का समय है···

और वह भोग भी कैसा, छी छी छी।

रुक्मिनी : अच्छा हो, यदुवंशी इस महल में घुसकर वेनुरती को पकड़ लें और जंगली जानवरों की तरह उसकी बोटी-बोटी चबा डालें।

वृद्ध : ये आप क्या कह रही हैं ?

रुक्मिनी : यहां कोई भी मां सुरक्षित नहीं।

वृद्ध : ओ हो, जब ही सुना है कि हस्तिनापुर से यहां अर्जुन आने को हैं—यदुकुल की स्त्रियों को यहां से ले जाने के लिए।

रुक्मिनी : और क्या सुना है ?

[वृद्ध वही गीत दुहराने लगता है।]

रुक्मिनी : बंद करो यह झूठा गीत !

वृद्ध : यह गीत सच है महारानी। मैंने इसे एक धर्मग्रंथ से सुना है।

रुक्मिनी : धर्म से मेरे पुत्र और वेनुरती का संबंध पुत्र और मां का था।

वृद्ध : जन्म-जन्मांतर का संबंध पति और प्रिया का था। प्रदुम्न कामदेव का अवतार है। वेनुरती वही रती है, कामदेव की प्रिया !

रुक्मिनी : काश, मैं तुम्हारी जगह होती ! पर अब कुछ नहीं हो सकता तुम चले जाओ यहाँ से।

[वृद्ध गाता हुआ चला जाता है। रुक्मिनी चुपचाप एक ओर बढ़कर वहीं खड़ी रह जाती है। दूसरी ओर से जरा और प्रदुम्न बातें करते हुए आते हैं।]

प्रदुम्न : (स्वगत) ये लोग क्या-क्या, कैसी-कैसी बातें करते हैं ! मेरा विश्वास दृढ़ होता है, मेरा विश्वास टूटने लगता है। मैं होने लगता हूं। मैं जीने लगता हूं। मैं ही खुद अपना विरोध करता हूं। (रुककर) फिर क्या हुआ, तूने पूरी शक्ति से कृष्ण के तलुवे में बाण मारा···क्या सोच कर, किस भाव से और कैसे ? डरो नहीं ! मैं हाथ नहीं लगाऊंगा। तू अवध्य है। पवित्र है। तूने उनके दर्शन किये। जो प्रेम करता है, वही तो···वही···वही···वही !

जरा : ऊ हू हू हू हू—

[त्रस्त, भयभीत भागने लगता है। प्रदुम्न दौड़कर उसे दबोच लेता है।]

प्रदुम्न : बता, नहीं तो मैं तेरा गला दबोच कर मार दूंगा।

[जरा उठता है, और जंगली पशुओं की तरह आवाज़ करता हुआ यह अभिनटन

करके बताता है कि कैसे कृष्ण लेटे थे, कैसे उसने बाण चलाया, कैसे उसने बाँसुरी तोड़ी, कैसे उन्होंने पीताम्बर फाड़ा और किस तरह उन्होंने विलाप करते हुए प्रदुम्न और वेनुरती का नाम लिया। इस बिन्दु तक दृश्य देखते-देखते रुक्मिनी आह करके रो पड़ती है।]

प्रदुम्न : (दौड़ता है) माँ !

रुक्मिनी : नहीं, तू मुझे मां मत कह।

प्रदुम्न : मेरी जननी !

रुक्मिनी : निर्दयी ! यह निर्मम नाटक देख तेरी आंख नहीं फूटी !

प्रदुम्न : वो कृष्ण किससे कम निर्मम थे, जिन्होंने महाभारत के युद्ध में सारी नारायणी सेना को झोंक कर स्वाहा किया। ··· प्रभास क्षेत्र में मूसल-युद्ध कर असंख्य यदुवंशियों की हत्या करायी।

रुक्मिनी : छी-छी-छी, ये कहते हुए भी तुझे लज्जा नहीं आती। (घूरती रहती है) पर तुझ में अब लाज-शर्म कहां !

प्रदुम्न : कृष्ण ने वेनुरती के लिए मेरे साथ निर्लज्ज व्यवहार नहीं किया ? जो व्रज में भागवत प्रेम के प्रतीक थे, उसी कृष्ण ने साधारण मनुष्य की

तरह मुझसे वेनुरती के लिए संघर्ष किया। एक ओर मनुष्य कृष्ण, दूसरी ओर मैं, और बीच में वेनुरती। अपशब्द कहते हुए उन्होंने मुझ पर आक्रमण किया था—मेरे अंक से वेनुरती को छीन लेने के लिए।

[सहसा जरा हू-हू करता हुआ, और जंगली पशुओं जैसा व्यवहार करता हुआ बोल उठता है।]

जरा : हां-हां-हां कहा था, कहा था···अंतिम परेम···

प्रदुम्न : (दौड़ता है) हां-हां क्या कहा ?

जरा : वो भाषा !

[हाथ हिलाने लगता है, 'मैं नहीं जानता' का संकेत करता है।]

प्रदुम्न : कुछ मतलब ही बता !

जरा : प्रश्न प्रश्न···।

प्रदुम्न : पहला प्रश्न क्या था ?

जरा : तू···कौन है, मैं यदुवंशी···

प्रदुम्न : झूठ, तू यदुवंशी नहीं हो सकता।

['मैं, हूं हूं हूं' कहता हुआ भागता है। प्रदुम्न उसका पीछा करता है। प्रदुम्न उसे पकड़ लेता है। रुक्मिनी उसे रोकती है।]

प्रदुम्न : लो यह कृपाण और मुझे यहीं समाप्त कर दो।

[रुक्मिनी देखती रह जाती है।]

रुक्मिनी : तेरे युद्ध का एक भाग मुझे भी लड़ना है। इस युद्ध में तेरी जननी की भूमिका चाहे जितनी छोटी हो जाय, मैं तुझे तेरे गौरव से नीचे नहीं गिरने दूंगी !

प्रद्युम्न : क्या है मेरा गौरव ? वेनुरती··· वेनुरती···।

रुक्मिनी : बंद करो यह चीखना।

प्रद्युम्न : जो अभी जरा ने कहा है, वह क्या है ?···जरा, तू ही बोल, क्या है मेरा गौरव ?···कोई नहीं बोलता...कोई नहीं बोलता !

[उसी क्षण भीतर से वेनुरती आती है।]

रुक्मिनी : अब और बोलने के लिए बाकी ही क्या है !

[वेनु को देखते ही रुक्मिनी भीतर जाने लगती है।]

प्रद्युम्न : रुको-रुको, जननी, रुको !

[रुक्मिनी का प्रस्थान।]

प्रद्युम्न : (लौटता है, क्रोध से वेनुरती की ओर देखते हुए) जब यहां अकेला सबसे घिरा हुआ तुझे पुकारा था, तब तुम कहां थी (जरा की ओर संकेत करते हुए)

देख जरा, यही है वह वेनुरती !··· कृष्ण का अंतिम प्रेम !

वेनु : क्या ?

प्रद्युम्न : जरा ने मुझे बताया है, मरते समय कृष्ण ने केवल तुम्हारा नाम लेकर विलाप किया था।

वेनु : कृष्ण ने तब से मेरी ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं !

प्रद्युम्न : ओह, फिर भी वह तुम्हें देखते ! जिसने ऐसा विश्वासघात किया···।

वेनु : तुम किस संशय में पड़े हो, मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। मेरा उनसे कभी कोई संबंध नहीं।

प्रद्युम्न : फिर भी वह तुमसे कहते···पूछते··· मनाते।

वेनु : मुझसे कहते...!

प्रद्युम्न : तुमसे प्रेम की भिक्षा मांगते...!

वेनु : यदू···!

प्रद्युम्न : नहीं ! यदू-यदू, इस नाम से मुझे पुकारने का अधिकार केवल उन्हीं को था···यदू-यदू···यदू···यदू !

[वेनु अपलक निहारती रह जाती है।]

प्रद्युम्न : कृष्ण की जगह यदि मैं होता···

[वेनु हंस पड़ती है।]

प्रद्युम्न : बंद करो यह निर्लज्ज हंसी। जरा

हमारे सामने बैठा है।

वेनु : तो···।

प्रदुम्न : हट जाओ यहां से !

वेनु : कृष्ण की जगह यदि तुम होते तो···?

प्रदुम्न : (दौड़कर क्रोध से पकड़ लेता है) निर्लज्ज ! विश्वासघातिनी ! वह मेरे पिता थे···उनके भागवत-प्रेम का रहस्य तू नहीं समझ सकती। मैं समझता हूं सारा रहस्य।

वेनु : कैसा रहस्य ?

प्रदुम्न : अन्तःपुर में छिपकर मेरे भागवत पिता की मृत्यु पर सबसे अधिक विलाप तूने किया था। मूर्तिवत् मौन थी उस रात ! आँखों से एक भी आंसू नहीं गिरने पाया था। आह ! कृष्ण का अंतिम प्रेम ! मैंने यह क्या किया ? तूने क्या किया ! हमने मिलकर···।

वेनु : विश्वास करो, तुम्हीं—केवल तुम्हीं मेरे प्रथम और अंतिम हो ! सुनो—मेरे प्रियतम ! मेरी ओर देखो। इस महल में पांव रखते ही, घूंघट उठाते ही सबसे पहले तुम्हीं को देखा था। उस क्षण कृष्ण के हाथ का वह कमल

सहसा नीचे गिर गया था, तुमने तब किस शक्ति और विश्वास से उस कमल को मेरी वेणी में गूंथ दिया था।

प्रदुम्न : उसी कमल की एक पांखुरी हमारे बीच में खिची है; मैं तुम्हें देख नहीं पाता। और उस चक्रवाक की तरह मैं तड़पकर रह जाता हूं, जो सूर्योदय के बाद भी अपनी प्रिया से नहीं मिल पाता। वह कैसा सूर्योदय ! वह कैसा प्रकाश, जो मेरे अंधकार को पूरी तरह काट नहीं पाता !

वेनु : (पकड़कर) मुझे देखो !

प्रदुम्न : किसे ? कैसे ? क्या देखूं ? कुछ और दीखने लगता है।

वेनु : वह 'और' हमारा भय है।

प्रदुम्न : वह विश्वास है।

वेनु : हर विश्वास के मूल में वही भय है।

प्रदुम्न : हम कितनी दूर हैं। देखो, बीच में खड़ा कोई हमें निहार रहा है !

[पृष्ठभूमि से बांसुरी का संगीत सुनायी देता है।]

वेनु : इस मिलन के लिए, जीवन के अंतिम क्षणों तक, हम इसी विद्रोह में जियेंगे।

प्रदुम्न : जब तक कृष्ण जीवित थे, तब तक यह विद्रोह था, पर अब यह क्या है ?

वेनु : आत्म-विद्रोह !

प्रदुम्न : कृष्ण को जरा ने नहीं मारा, कृष्ण ने आत्महत्या की !

वेनु : उन पर शाप था !

प्रदुम्न : वह शाप स्त्री का था !

वेनु : वह उनकी नियति थी, और वे स्वयं उसके नियंता थे !

प्रदुम्न : हमारी नियति क्या है ?

वेनु : जिसके हम नियंता हैं; हर क्षण जिसकी ओर बढ़ रहे हैं, हम जिसके लिए विवश हैं। हमारे कल्पवृक्ष का मूल गगन में है, लोग इसे उल्टा समझते हैं, पर यहां कहीं कुछ भी उल्टा-सीधा नहीं। मैं जन्म-जन्मातर से तुम्हारी हूं !

प्रदुम्न : तुम मंत्र की तरह मुझ पर छायी रहती हो।

वेनु : वही तुम हो !

[प्रदुम्न को भुजपाश में बांधे हुए वेनु अंदर चली जाती है। जरा भटकता हुआ जाता है। कुछ ही क्षणों बाद वेनु की परिचारिका आती है। पीछे-पीछे दूसरा

सैनिक खाली हाथ।]

दूसरा : हे, हमें बहुत पीछे-पीछे घुमाओ ना ! हमैं लाज लागै !

परिचारिका : अरे कैसन मरदवा हो ?

दूसरा : प्रदुम्न से तो अच्छा है अपन ! सुनो हो। हमार नाम है काजर !

परिचारिका : मोरे आंखिन कै। (लजाती हुई) हमार नाम है सगुन।

काजर : वाह, वाह ! काजर औ सगुन !

सगुन : हमरे आंखिन मां काजर बहुत सोहाय !

काजर : हे, बहुत बोला ना, हमैं लाज लागै।

सगुन : हे, कैसन सिपाही हो ?

काजर : अरे तोहरे सामने हम कहां कै सिपाही ! (गा पड़ता है)

पान ऐसी पतरी बहुरिया
कुसुम ऐसी सुंदर
सुंदरि चढ़ि गयी पिया की अंटरिया
रचावै सुख निदिया
पान ऐसी पतरी बहुरिया···

सगुन : (गाती है)

अंचरन सुरुज मनैइबै,
तबै अपने राजा कै पइबै।
मोरे महराजा के काली काली अंखिया

अंखियन कजरा लगैइबै,
तबै अपने राजा कैं पइबै मोरे
महराजा के गोरी गोरी बहियाँ

दोनों : (एकसाथ गाते हैं)
बहियाँ में मुखड़ा छिपैइबै
तबै अपने राजा कै पइबै।
मोरे महराजा के काली काली जुल्फी
जुल्फी में इतर लगैइबै···

काजर : बोलो, तुहैं का चाही ! जौन कहो गहना बनवाय देई।

सगुन : हमार गहना हमार सोहाग है।

काजर : अरे लजाव नाहीं। अपने पास पैसा कौड़ी कै कमी नाहीं, हां।

सगुन : बस, मोरे महराजा कै बड़ी बड़ी अंखिया, अंखियन में काजर लगइबै !

दोनों : (एकसाथ) तबै अपने राजा कैं पइबै !

[गाते हुए चले जाते हैं। सूने मंच पर दुर्ग का सिपाही आकर पहरा देने लगता है। सुबह होती है। दूसरा सिपाही आता है।]

पहला : ओ रे ! रात कहां बितायी ?

दूसरा : पहले तैं बता ना !

पहला : अरे हमार का पूछत ह्यो, हमार पाँचों अंगुरी घी में। दिन भर दुम्न-प्रदुम्न,

रात भर अभ्रू-बभ्रू। रात में देखो इत्ता माल लूटा है !

दूसरा : हम तो भैया एक गजब्बा में फंसि गये। एक दिलजानी मिलीं, बोलीं, 'ऐ हो, हमार तुह से नैन लड़िगे।' हम बोलेन, 'हम कौनो प्रदुम्न हई का, कि औरत से उल्लू बनि जाई। एकहि हुचक्का में नैना लड़ जाई।'

पहला : फिर का भै ?

दूसरा : बड़ी अच्छी है। इतनी सीधी, इतनी सुंदर कि का बताई ! हम तो लजाय गये। थर-थर कांपे लागे वोकरे आगे। नाम भी कित्ता अच्छा, सगुन ! वाह ! मैं काजर ऊ सगुन। भइया हो, मार कटारी मरि जाना, अंखिया काहू से ना लड़ाना !

पहला : अरे चुप-चुप कोऊआइ रहा है।

[संगीकर का प्रवेश। दोनों सैनिक सावधान हो जाते हैं।]

संगीकर : किसकी आज्ञा से तुम लोग यहां पहरा दे रहे हो ?

पहला : महाराज महारानी के संग अन्तःपुर में विश्राम कर रहे हैं !

संगीकर : (क्रोध से) विश्राम ? तुम लोग यहां मशाल दिखा रहे हो, चलो भागो

यहां से।

दूसरा : फिर कहां जाकर चक्कर दें ?

संगीकर : चक्कर ! अरे वह एक ही चक्कर काफी है जिसमें तुम्हारे महाराज फंसकर हम सब को डूबो रहे हैं।

दूसरा : इसमें हम का करें ? भला बताओ न !

पहला : आज्ञा मिले तो दाल-भात में मूसर-चंद बनें !

संगीकर : ऐसा कुछ कर सकते हो क्या ?

पहला : महाराज, एक चउचक उपाय है, साम्ब का मुंह कृष्ण से मिलता है ना, अउर साम्ब से वेनुरती मन ही मन लड्डू फोड़ती हैं। सो साम्ब को भिड़ाय के प्रदुम्न को दिखाय दिया जाय···

संगीकर : ये किसकी चाल है ? बता, तूने ये कहां सुनी ?

पहला : कहीं नहीं, कहीं नहीं !

दूसरा : महाराज, ये हमारी चाल है।

संगीकर : खबरदार ! सच-सच बताओ।

पहला : दुहाई, ये वभ्रु के मुंह से सुना है।

संगीकर : कैसे, कहां ?

दोनों : सपने में सुना है।

[संगीकर हंसता है और दोनों सैनिक

भागते हैं।]

संगीकर : ये चाल बहुत अच्छी है। एक पत्थर से दो···महाराज कुमार प्रदुम्न को वेनुरती के जाल से निकालने का इससे अच्छा और उपाय नहीं हो सकता।

[दुर्गपाल का प्रवेश।]

दुर्गपाल : पहरे के दोनों सिपाही कहां गये ?

संगीकर : सारा नगर लूटा-फूंका जा रहा हो और यहां अन्तःपुर के द्वार पर पहरा। धर्म लूटा जाय अधर्म पर पहरा !

दुर्गपाल : यह तुम कह रहे हो, प्रदुम्न के मित्र और सेनापति होकर !

संगीकर : जो स्त्री कृष्ण जैसे पति को धोखा दे सकती है वह अपने प्रथम दर्शन के प्रेमी से विश्वासघात न करेगी ?

दुर्गपाल : वभ्रु और व्यासपुत्र की भाषा में बोल रहे हो !

संगीकर : जिस एक स्त्री के कारण, मेरे मित्र, स्वामी की छवि टूटी, उसकी प्रतिष्ठा भंग हुई, मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता।

दुर्गपाल : इस संबंध को तुम्हें नये अर्थ और संस्कार में देखना होगा।

संगीकर : इस आडम्बर को चाहे जितने शब्दों से छिपाओ, सच्चाई वही रहेगी।

दुर्गपाल : यह कहना तुम्हें शोभा नहीं देता !

संगीकर : शोभा और सुन्दरता, युद्ध के मैदान में जब इन शब्दों की धज्जियां उड़ती हैं, कराह और चीख से जब शून्य भरने लगता है, तब केवल एक ही चीज सामने होती है, एक सम्बन्धहीन ठंडा संसार (रुककर) इसलिए मैं कहता हूं प्रदुम्न को वेनुरती के प्रेम-जाल से मुक्त करना होगा।

दुर्गपाल : यह असम्भव है।

संगीकर : तुम्हारी कोई प्रेमिका है ? मेरी तीन प्रेमिकाएं रही हैं। और हर प्रेमिका मुझ पर जान देती थी पर तीनों को अब मेरा नाम तक न याद होगा। और मैं भी अब उन्हें नहीं पहचान पाऊंगा।

दुर्गपाल : वह प्रेम नहीं, केवल शरीर की भूख रही होगी !

संगीकर : यह क्या नहीं है, तभी तो यहां पहरेदार की जरूरत है।

दुर्गपाल : मुझे दुःख है, तुम इस तरह सोचते हो।

संगीकर : मुझे तुमसे कहीं ज्यादा दुःख है।

[एक ओर से दो यदुवंशी आते हैं। दूसरी ओर से प्रदुम्न आकर इन सबसे अदृश्य खड़ा रहता है।]

संगीकर : नगर के क्या समाचार हैं ?

पहला : नगर का एक भाग और डूब गया।

संगीकर : महाराजकुमार प्रदुम्न को अन्तःपुर से बाहर कौन निकाले।

दूसरा : हमारी शेष यदुसेना का एक-चौथाई भाग फिर उन्हीं शत्रुओं में जा मिला।

संगीकर : दुर्गपाल ! जाओ तुम भी वहीं अन्तःपुर में छिप जाओ।

दुर्गपाल : इस कटुता से क्या होगा ?

संगीकर : तुम सबको केवल बातें करने का मसाला मिलेगा।

दुर्गपाल : मैं अभी प्रदुम्न को सूचना देता हूं।

संगीकर : पर वे न जाने कितनी रातों के जगे होंगे, और प्रिया के अंक में छिपकर सो रहे होंगे।

प्रदुम्न : (अपने-आप) काश मैं कहीं सो पाता। मेरी आंखें फूट जातीं...कान बहरे हो जाते...।

तीसरा : लोगों का विश्वास है, अंत में वभ्रु ही यहां का राजा होगा।

संगीकर : (हंसता हुआ) त्रिया चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्...

दुर्गपाल : जाता हूं।

प्रदुम्न : (तेजी से प्रकट होकर) रुको, मैं जगा हूं।

संगीकर : अन्तःपुर में जागा नहीं जाता।

दुर्गपाल : संगीकर !

संगीकर : चुप रहो दुर्गपाल, अच्छा हो यहां से चले जाओ। अब और नहीं सह सकता !

प्रदुम्न : मैं भी अब और नहीं सह सकता।

संगीकर : आज तक मैंने कभी अपनी पराजय नहीं देखी।

प्रदुम्न : मैंने भी नहीं देखी।

संगीकर : किन्तु अब देखनी होगी।

प्रदुम्न : तो और करो मेरा परिहास'''और करो मेरा अपमान'''चिल्लाकर पूरे नगर में कहो, मैं दुश्चरित्र, विलासी'''सारा नगर जो कहता है वह कम है, तुम सब मिलकर उसे पूरा करो। यही मैंने उससे भी कहा था। वह अंक में मुझे बांधे थी, और मैं उसे खींचता उस अंधकार तक ले आया था।

संगीकर : आप योद्धा हैं।

प्रदुम्न : पता नहीं मैं क्या हूं।

संगीकर : आप उस स्त्री पर विश्वास करते हैं

द्वारिका में प्रदुम्न यदुवंशियों से घिरा हुआ

जरा कृष्णवध-कथा कहता हुआ

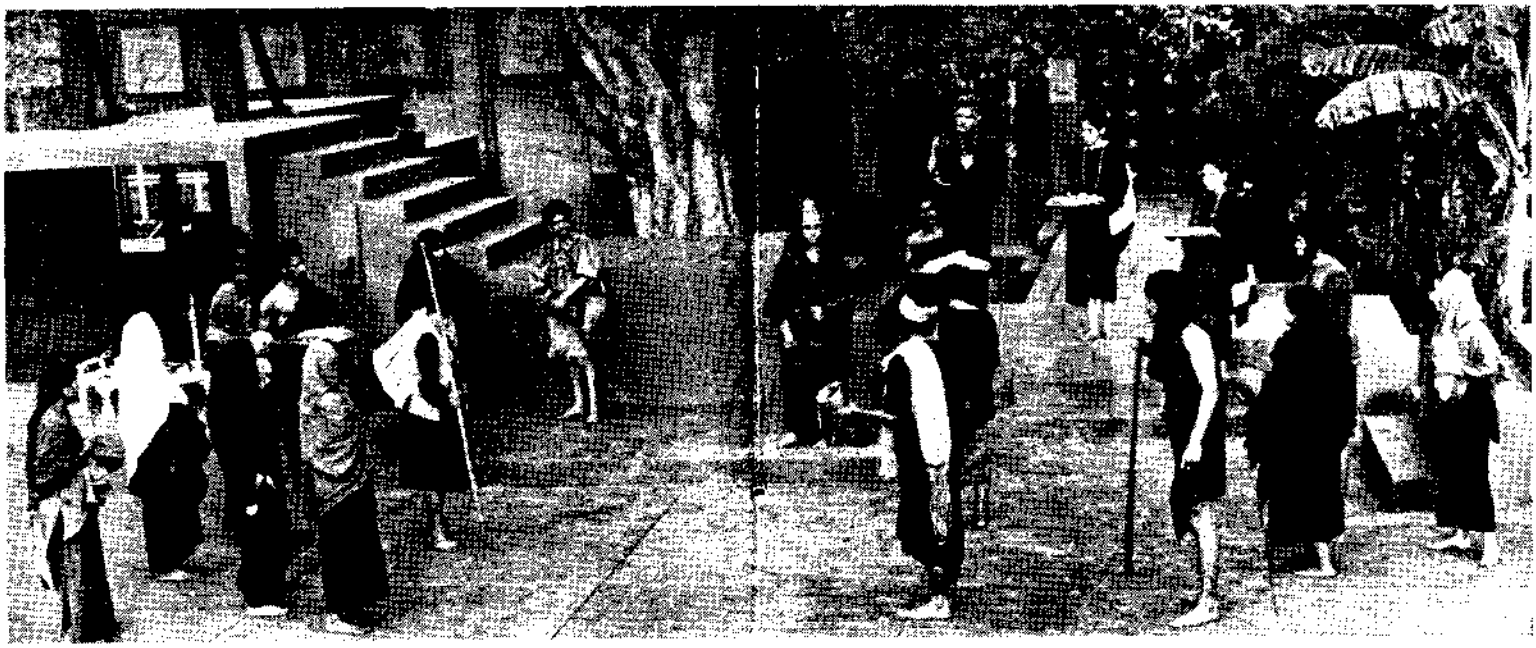

यदुवंशियों (भिखारियों) के सामने रुक्मिनी

बभ्रु प्रदुम्न से संघर्षरत

जरा का वध करते हुए

वेनुरती और साम्ब

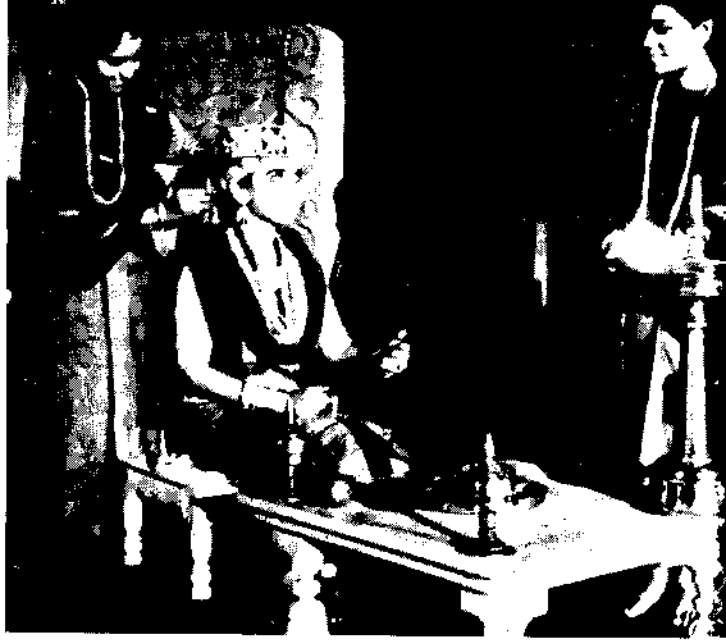

परिचारिकाओं से शृंगार कराती हुई वेनुरती—प्रद्युम्न-मिलन की प्रतीक्षा में

प्रद्युम्न और वेनुरती

वेनुरती और प्रदुम्न का साक्षात्कार

जिसने कृष्ण के साथ विश्वासघात किया।

प्रदुम्न : (चीखकर) संगीकर !

[कृपाण खींचकर संगीकर की ओर आवेश में दौड़ता है। दुर्गपाल बीच में आकर बचा लेता है।]

दुर्गपाल : क्या देख रहा हूं। इससे हम सब पराजित होंगे, और विजयी होगा वही अंधकार।

संगीकर : तुम सब यहीं बैठकर कविता चबाओ।

प्रदुम्न : रुको, तुम भी यदि मुझ पर अविश्वास करोगे, तो विश्वास करेगा कौन ?

संगीकर : यदि आप कहीं विवश हैं, तो मैं भी कहीं विवश हूं।

प्रदुम्न : जरा का मुख देखा है ? वह मृत्यु जैसा नहीं लगता ?

संगीकर : मुझे वही मुख कई रूपों में दीखता है। वही काल समुद्र है, इस नगर को डुबाता हुआ, वही मुख अन्तःपुर में है...!

दुर्गपाल : बस-बस, बंद करो। नगरवासी काल समुद्र की शांति के लिए पूजा देने जा रहे हैं।

[संगीकर यदुवंशियों सहित निकल

जाता है । पृष्ठभूमि में संगीत उभरता है। नगरवासी काल समुद्र की शांति के लिए पूजा चढ़ाने जा रहे हैं। भीतर से दौड़ी हुई वेनुरती आती है।]

वेनुरती : आपका इस तरह अकेले समुद्र पर जाना अनुचित होगा ।

प्रदुम्न : तुम करती हो उचित-अनुचित की बात !

दुर्गपाल : समुद्र तट पर अंधविश्वासी लोग कुछ भी कर सकते हैं।

वेनुरती : यदु···!

प्रदुम्न : फिर वही शब्द, इस नाम से मुझे वही मेरे पिता कृष्ण पुकारते थे। केवल वही, वही केवल !

वेनुरती : नहीं, ये शब्द मेरा है। वही मेरा तुम हो ।

प्रदुम्न : निर्लज्ज ! चली जा यहां से ! इसी शब्द का अर्थ है द्वारिका के तट पर गरजता हुआ वह काल समुद्र ।

[वेनु चली जाती है।]

प्रदुम्न : वो देखो एक लम्बी गहन छाया, जिसके एक सिरे पर यहां मैं खड़ा हूं, और दूसरे सिरे पर विलाप करती हुई वेनुरती बैठी है।

दुर्गपाल : वहां एक प्रकाश देख रहा हूं।

प्रदुम्न : ऐसा क्यों ?

दुर्गपाल : हां, ऐसा क्यों ?

प्रदुम्न : तुम मत करो प्रश्न मुझसे ।

दुर्गपाल : आप दण्ड ही तो देंगे !

प्रदुम्न : हर प्रेम एक दण्ड है। तुम भी जाओ दुर्गपाल, मुझे यहां अकेला छोड़ दो मेरा साथ कोई नहीं दे सकता! मैं खुद नहीं हूं अपने साथ ! जाओ दुर्गपाल, तुम्हारी सहानुभूति मुझे और दयनीय बनाती है।

[दुर्गपाल जाता है।]

प्रदुम्न : इस नगर पर कितनी जल्दी रात घिर आती है। (सहसा) कौन ?

[जरा आता है।]

प्रदुम्न : कौन हो तुम, क्या कहना चाहते हो ? ओह तुझे नींद आ रही। तू सोता भी है, बता कैसे सोता है ?

[जरा चुपचाप वहीं सीढ़ियों पर सो जाता है। प्रदुम्न एकटक उसका मुंह निहारता है।]

दुर्गपाल : (बढ़कर पुकारता हुआ) दौवारिको ! द्वारपाल ! दुर्ग के सारे द्वार बंद कर लो। कहीं कोई गवाक्ष खुला न रह जाय, नहीं तो समुद्र के बढ़ते हुए जल के छींटे सर्पों का रूप

धारण कर दुर्ग में घुस आयेंगे।

[पृष्ठभूमि में समुद्र के गरजने की आवाज—उसी में 'सावधान'-'सावधान' के शब्द उभरते हैं। सहसा प्रद्युम्न की नज़र पैर पर पैर रखकर सोये हुए जरा पर पड़ती है। वह पास जाता है।]

प्रद्युम्न : (अपने-आप) वे मुझसे टूटकर, निर्जन वन में, इसी तरह सोये होंगे और उस उठे हुए तलवे पर तब···

[प्रद्युम्न जरा के उस तलवे से अपनी आंखें बांध लेता है। पृष्ठभूमि में गरजते हुए समुद्र का कोलाहल छा गया है। 'सावधान' - 'सावधान' के मद्धिम स्वर उसमें कौंध रहे हैं।]

दूसरा अंक

•

पहला दृश्य

समय : रात का पहला प्रहर।

स्थान : वेनुरती का कक्ष।

[दर्पण के सामने वेनु शृंगार कर रही है। परिचारिका सहायता कर रही है।]

परि० : हमहूं तो परेम किये रहन···एक सिपाही से।

वेनु : सिपाही से? हां, हर प्रेमी सिपाही तो होता ही है।

परि० : मुला हमार सिपहिया वैसन नांहीं रहा, जैसन हम हैं। बड़ा सिधवा रहा। काम करत-करत हमसे उनकै भेंट ह्वै गे। हम उन्हैं चाहिन, वै हम्मैं चाहिन। हम कहेन, हमरे बदे एक झुमका गढ़ाय देव, वै मरदवा इत्ता सिधवा की हमरे लिए झुमका ही

नांहीं, बुन्दा, बाली, गलचुम्मी, हबेल, बाजूबंद सब खरीद डारिन। ई बदे कै आपन पांच बीघा खेत बेंचि दिहिन।

वेनु : मेरे प्रेम की तुलना नहीं हो सकती।

परि० : अरे सब कहे कै बात है, चारों ओर वही मरदवा वही मेहरारू !

वेनु : मेरे प्रदुम्न और मैं, हमारे प्रेम को समझना इतना आसान नहीं।

परि० : मुला हम तो खूब समझत हैं।

वेनु : क्या समझती है ?

परि० : अरे प्रेम होत है एक दिन, ओकरे बाद तो कोरा में लरिका !

वेनु : अब देख मेरा रूप ! मैं इसे निहार कर खुद लज्जित हो जाती हूं। इसे मैं जितना तोड़ना चाहती हूं, उतनी मैं···।

परि० : गाल मा काजर का छोटन-सा टीका लगाय लेव, लाज शरम छूटि जाइ। (लजाती हुई) हमारे सिपाही का नाम है काजर ! काजर लगाय लेव ना !

वेनु : क्या कहती है तू, मैं मुख पर कालिख लगाऊं ?

परि० : हाय दइया, कालिख नाहीं, काजर।

वेनु : काजर भी तो वही कालिख है।

परि० : हाय ! हमारि मतलब ई नाहीं है !

देखो ना, हमरे गाल पै हमेसा-हमेसा के लिए गोदना गोदा बाय। यही तो चीन्ह है !

वेनु : उनके आने का समय हो रहा है।

परि० : तो आवे देव ना, राउर डरत काहे हैं? आज तो महाराज कुमार राउर बदे कमल के फूल लैहैं।

वेनु : कमल के बीचो-बीच जहां पराग-कोष है उसमें बादल और बिजली है। (रुककर) आज कितने दिन हो गये, मैं संध्या से सारी रात इसी तरह शृंगार किये बैठी रहती हूं; पर वह नहीं आते। और मारे लाज के मैं अन्तःपुर में गड़ जाती हूं।

परि० : कहत तो हई, गालन पर टोटका दइ ल्योना। रंगमहल कै ई द्वार खोले रहो।

वेनु : मेरे अन्तःपुर के द्वार उनके लिए सदा खुले रहते हैं, पर वे द्वार पर दस्तक देकर लौट जाते हैं। मैं नित्य उनके लिए अपने द्वार पर दीपावली सजाये बैठी रहती हूं; पर अन्तःपुर में उनके पैर रखते ही, उसी कमल-कोष से बादल और बिजली तड़प उठती है, और मेरे अन्तःपुर के सारे दीप बुझ

जाते हैं।

परि० : चिंता नाहीं करो ! आज सब चौचक है। मरद को अउर का चाही।

[सहसा पृष्ठभूमि में दुर्गपाल का स्वर कौंधता है।]

स्वर : सावधान ! राजमहल में तुम सब नहीं आ सकते।

वेनु : यह किसकी आज्ञा है, कौन अंदर आना चाहता है ? कौन उसे रोक रहा है ?

परि० : घबड़ा ना, हम देखत हई।

[परिचारिका बाहर जाती है। वेनुरती अपने-आपको दर्पण में निहारती है और सहसा डरकर चीख पड़ती है। परिचारिका दौड़कर आती है।]

वेनु : दूर करो इस दर्पण को। इसमें अभी कृष्ण की परछाईं चमकी थी।

[परिचारिका दर्पण को हटा देती है।]

वेनु : दर्पण में घायल कृष्ण के उसी पीले मुख को मेरे प्रदुम्न निहार रहे थे। आह, वे दोनों मुख !

परि० : हाय, धीरज धरो रानी। बाहिर अर्जुन आये हैं, उन्हीं से मिले बदे लोग अन्दर घुसत रहिन। द्वारपाल उन्हीं कै रोकत रहिन।

वेनु : (सहसा) बाहर देहरी पर किसी के आने की आहट हुई है।

परि० : अब हम जात हई रानी, हां, बहुत लजाइउ ना, धीरज और होशियारी से काम लिहू !

[चली जाती है। प्रदुम्न हाथ में कमल लिये आता है।]

प्रदुम्न : तुम कब से यहां खड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं ? मैं तुम्हें हर क्षण देखता हूं !

वेनु : पर तुम यहां नहीं आते।

प्रदुम्न : सदा यहीं पहुंचने की यात्रा करता हूं !

वेनु : मेरे यदू !

प्रदुम्न : आज स्वयं गया था सरोवर, तुम्हारे लिए यह कमल लाने। आह! सरोवर में कितना कीचड़ था। (वेणी में पुष्प लगाता है) मुझे देखो, कितना सुन्दर है तुम्हारा मुख। यदि तुम्हें न देखा होता, तो मैं भी वही यदुवंशी था, जो द्वारिका में आये हुए ऋषियों का अपमान करता घूमता था···।

[वेनु के अंक में अपना मुख गाड़ देता है।]

वेनु : तुम कितने दिनों बाद मेरे अन्तःपुर में आये !

प्रद्युम्न : मैं नित्य तुम्हारे अन्तःपुर के द्वार पर आता हूं, पर सहसा कोई आकर वह द्वार बन्द कर देता है। और आज की तरह मैं नित्य उसी द्वार पर कान लगाये खड़ा रहता हूं। लगता है, कोई उस द्वार पर मेरा रास्ता रोके खड़ा है।

वेनु : आज दर्पण में वही मुख देखा है, तब से न जाने मुझे क्या हो गया है। मैंने तुम्हें इस नगर में लाकर यह सब क्या किया ?

प्रद्युम्न : इन नगर में वापस लाते हुए तुमने कहा था, 'हम इस नगर में एक नयी सृष्टि करेंगे'···

वेनु : मैं केवल वही स्त्री हूं···केवल वही स्त्री !

[वेनु रोती हुई भागती है। प्रद्युम्न उसके पीछे पुकारता हुआ चला जाता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : दुर्ग का वही मैदान।

समय : रात का दूसरा पहर।

[वभ्रु दोनों सैनिकों के साथ आता है। पहला सैनिक स्त्री-भेष में है।]

वभ्रु : तुम यहां अंधेरे में बैठकर औरत की तरह रोने का अभिनय करोगे।

पहला : हाय हाय ! दुहाई मोरि मइया।

वभ्रु : और ऊंची आवाज में !

दूसरा : इस तरहअ—री मेरी मइया !

पहला : ई काम बदे पांच सौ मारा है।

वभ्रु : जा बैठ, शुरू कर, बात न बनी तो हड्डी-पसली एक कर दूंगा।

[पहला बैठकर रोना शुरू करता है। वभ्रु तेजी से बाहर जाता है।]

दूसरा : अरी ससुरी, नाक तो साफ कर।

पहला : चुप रह दाढ़ीजार का पूत।

दूसरा : थोड़ी राग धीमी कर ले मेरी प्राण प्यारी, दिल की कटारी···।

पहला : हाय-हाय ! मेरे परेमी ने मुझे मारा।

दूसरा : मुझे मारने दे तब बनेगा।

[दूसरा उसे मारने का अभिनय करता है। पहला हाय-हाय करके रोता है।]

दूसरा : भूलना नहीं, साम्ब से बतियाने न लगना।

[पहला सिसकियां भर रहा है, दूसरा पहरा दे रहा है। व्यासपुत्र के साथ साम्ब का प्रवेश।]

व्यासपुत्र : वो देखो, वेनुरती बैठी रो रही है। प्रदुम्न ने गहरा अपमान किया है। मारा है।

साम्ब : मारा है ?

व्यासपुत्र : उससे ज्यादा अपमान किया है।

साम्ब : निर्लज्ज है प्रदुम्न !

व्यासपुत्र : मति मारी गयी है।

साम्ब : (बढ़कर) प्रदुम्न जानवरों जैसा व्यवहार करता है। मुझे बताइए, क्या किया है उसने ?

दूसरा : महारानी तब से कुछ बोलचाल नहीं रही है।

[व्यासपुत्र चुपके से अदृश्य हो जाता है।]

साम्ब : मुझे पता चला है, उसने तुम्हें अन्तःपुर भर में दौड़ाया है, सच है, अगर वह पकड़ लेता तो गला दबोच लेता। वह पागल हो गया है···मुझे बताइए,

मैं किस काम आ सकता हूं ?···कुछ बोलिए तो सही···मेरी ओर देखिए। ओफ़ ! मैं आपका यह दुख और अपमान नहीं सह सकता।

[साम्ब बिलकुल पास पहुंच जाता है। पहला उठकर भागता है। साम्ब वेनु-वेनु कहकर पुकारता है। दूसरा सैनिक भी इस बीच अदृश्य हो गया है। भीतर से वेनुरती आती है।]

साम्ब : ये आपको क्या हो गया। आप कुछ बोलती क्यों नहीं ?

वेनु : तब से न जाने मुझे क्या हो गया है।

साम्ब : कब से ?

वेनु : जब से मैंने दर्पण में कृष्ण का वह मुख देखा है।

साम्ब : आपकी ऐसी बुरी दशा···पर आप बोल क्यों नहीं रही थीं। आप भी मुझे शत्रु समझती हैं क्या ?

वेनु : नहीं, नहीं, तुम्हें तो वो भी शत्रु नहीं समझते।

साम्ब : प्रदुम्न ने तुम्हारा अपमान किया है।

[दायीं ओर अंधेरे में प्रदुम्न छिपा खड़ा हुआ दिखता है।]

वेनु : बोलो ! कृष्ण अब भी क्यों इस तरह हमारे बीच खड़े रहते हैं ?

साम्ब : मैं कुछ नहीं जानता।

वेनु : बताओ, तुम तो कृष्णमुख हो।

साम्ब : प्रदुम्न में कहीं घृणा है।

वेनु : तुमसे मैं एक भीख मांगती हूं।

साम्ब : आज्ञा दो।

वेनु : पता नहीं, मुझे डर लग रहा है। लगता है हर क्षण कोई मेरा पीछा कर रहा है।

[साम्ब चुप है।]

वेनु : मैं जब चुप रहती हूं, तब कोई मेरे भीतर बोलता है, जब मैं बोलने लगती हूं तो भय से कांप उठती हूं। सम्हालो, सम्हालो मुझे, लगता है कोई मुझे घूर रहा है।

[वेनुरती गिरने लगती है। साम्ब उसे अपनी बांहों में सम्हाल लेता है।]

प्रदुम्न : (सहसा प्रकट हो) निर्लज्ज!

[वेनुरती भयभीत दूर हटती है। प्रदुम्न कृपाण खींचे हुए आवेश में दौड़ता है। साम्ब उसे कृपाण से रोक लेता है।]

प्रदुम्न : विश्वासघात तेरे रक्त में है।

वेनु : नहीं···नहीं···नहीं···!

प्रदुम्न : (आवेश में वेनुरती को पकड़ लेता है) मैं तेरी नाक काटकर इन्हीं सड़कों पर छोड़ दूंगा।

[वेनुरती को भींचता हुआ नीचे गिरा देता है।]

प्रदुम्न : हे ईश्वर! यह निर्दोष मुख देखकर, मैं इतना शक्तिहीन क्यों हो जाता हूं! मेरी आंखों के सामने और कुछ नहीं सूझता···सारी दिशाओं में कुछ गूंजने लगता है। शून्य में कुछ कांप उठता है। यह कृपाण जैसे कोई खिलौना हो जाता है। किसी रेगिस्तान में मृग की तरह भटक जाता हूं।

साम्ब : अपराधी तू है···तू ही मूल है।

प्रदुम्न : तू कृष्णमुख है, नहीं तो अभी तेरी हत्या कर देता।

वेनु : झूठ है! झूठ है···झूठ है।

[यह कहती हुई अन्तःपुर में भाग जाती है।]

प्रदुम्न : झूठ है, तो सच क्या है?

[प्रदुम्न मूर्तिवत् खड़ा रह जाता है। साम्ब और संगीकर उसे छोड़कर चले जाते हैं।]

तीसरा दृश्य

स्थान : वही दुर्ग।

समय : वही रात।

[भिखारी लोग अर्जुन का पीछा करते आते हैं। दूसरी ओर से वृद्ध और दुर्गपाल आते हैं। भिखारी लोग एक स्वर में चिल्ला कर कहते हैं—बोलो जवाब देउ !]

हारिक : टुकुर-टुकुर का देखत ?

पतोला : छाती का फुलात ?

अर्जुन : ये लोग कौन हैं ?

वृद्ध : मानुख तुम्हें अब अपरिचित लगि रहो है।

अर्जुन : मैं किसी को भी नहीं पहचानता।

दुर्गपाल : आपका यह बोध इसी नगर का है, या इससे पहले का ?

[अर्जुन चुप है।]

दुर्गपाल : इस नगर में आकर आपको सब कुछ उलटा दीखा होगा—समुद्र, यदुवंशी, इतने सारे भिखमंगे—पर सच्चाई का यह केवल एक पक्ष है।

अर्जुन : यही है पूरी सच्चाई।

[सारे भिखारी हंस पड़ते हैं।]

पतोला : (हंसता हुआ) यहो है पूरी सच्चाई।

देवक : भाखा बोलि रहे हैं !

विलोमन : नाम अर्जुन सुना था।

विदूरथ : नाम बड़ो दरसन छोटो।

अर्जुन : ये लोग चाहते क्या हैं ?

दुर्गपाल : यह है नया महाभारत, यहां न वे कर्ण हैं, न भीष्म, वह कौरव सेना भी नहीं। पर यदुवंशी उसी महाभारत की रचना है। इस नयी फसल के बारे में कृष्ण को पता था, तभी वह महाभारत के युद्ध में…।

अर्जुन : तुम्हारी वाणी का विवेक और साहस मुझे आश्चर्य में डालता है।

[मौन खिंच जाता है।]

दुर्गपाल : इस नगर में मेरे भी तीन बच्चे मरे हैं। काल समुद्र मेरी पत्नी को भी निगल गया है। पर मेरे जीने का अर्थ इस मृत्यु से बड़ा हो जाता है। मैं उनकी मौत से जितना ही मरा हूं, वे मेरे इस बाकी जीवन से उतने ही जीवित रहेंगे। समुद्र भयानक है पर उसमें जल है।

अर्जुन : कौन हो तुम ?

दुर्गपाल : मैंने इस राजभवन का नमक खाया है, यही मर्यादा मुझे मेरे मूल्य से जोड़े हुए है।

[चुपचाप रुक्मिनी का प्रवेश। भिखारी उसे देखकर आपस में बड़बड़ाने लगते हैं।]

देवक : चलो, यहां आपन सगो कौन ?

विदूरथ : सब भड़भड़िया हैं।

हारिक : सब मतलबी !

विलोमन : आपन भाग ऐसो है।

पतोला : भइया, चलो, तुम्हूं करौ मजा ! चलो, कूच करौ।

[सब भिखारी बड़बड़ाते चले जाते हैं।]

अर्जुन : यह सब कृष्ण को पहले से पता था।

दुर्गपाल : मैं कृष्ण का नियुक्त दुर्गपाल हूं। यदु-वंशियों के बीच भोगे हुए कृष्ण का दु:ख मैं जानता हूं।

रुक्मिनी : मेरे नाथ फिर अपनी इस द्वारिका में नहीं आये। इसका कारण वही वेनुरती है, जिसने कृष्ण के मन-प्राण को तोड़ा, जिसने उनके मर्म को घायल कर उन्हें इतना अकेला और विवश बनाया। महाभारत के युद्ध में मेरे प्रभु इसी वेनुरती से टूटकर गये थे, तभी वहां उनकी गीता में फल के

प्रति इतनी विरक्ति, वैराग्य और···।

[वेनुरती का प्रवेश।]

अर्जुन : महारानी रुक्मिनी !

रुक्मिनी : इसीलिए पूरे महाभारत में कृष्ण की भूमिका इतनी करुण और आत्म-विरोधी थी···।

वेनु : मुझे भी कुछ कहने की आज्ञा दीजिए।

रुक्मिनी : नहीं, तुझे आज्ञा नहीं मिल सकती। यही है वह अपराधिनी, जो इस नगर की शांत रजनी में पुच्छल तारे की तरह एकाएक दिखी। यही है जिसने मेरे प्रभु को उस जंगल में···।

वेनु : नहीं, नहीं, मुझे भी कहने का अधिकार मिलना ही चाहिए।

रुक्मिनी : सावधान अर्जुन ! इसे मत दो कुछ बोलने का अधिकार। इसकी बातों में जादू है, उच्चाटन-शक्ति है कुटिल नयनों में। इसने एक ही मंत्र में मेरे पुत्र को अपने झूठे प्रेमपाश में बांधा, और दूसरी ओर मेरे प्रभु को तोड़ डाला।

वृद्ध : (गाता हुआ आता है)

जब यदुवंश कृष्ण अवतारा

हुई हैं हरणि, महामहि भारा।
कृष्ण तनय होइहै पति तोरा
बचन अन्यथा जाय न मोरा।।

वेनु : प्रद्युम्न मेरे लिए एक अनिवार्य पुरुष था, केवल पुरुष, जैसे मैं उसके लिए केवल एक स्त्री थी !

रुक्मिनी : (घृणा से) और कृष्ण क्या थे ?

वेनु : मेरा यह जन्मसिद्ध अधिकार है, मेरा पति वही होगा जो मेरा प्रियतम हो !

रुक्मिनी : मेरे स्वामी क्या अपनी सोलह हजार रानियों और सात पटरानियों के प्रियतम नहीं थे ?

वेनु : सोलह हजार···और सात···वह निर्मम सत्य मुझसे मत कहलाओ, महारानी, वह दिवंगत कृष्ण के प्रति अपमान होगा।

रुक्मिनी : तू मान-अपमान से डरती है !

वेनु : मैंने तुम्हारे पुत्र से प्रेम किया है।

रुक्मिनी : सावधान, कोई इस जादूगरनी की बातों में न आए। यही कारण है, महाभारत में कृष्ण का अपनी नारायणी सेना के ही विरोध में खड़े होने का।

दुर्गपाल : क्षमा हो महारानी, अपनी प्रतिक्रिया

में कृष्ण को इतना छोटा मत बनाओ ! कृष्ण का अन्तर्विरोध इतिहास का था, व्यक्ति का नहीं।

रुक्मिनी : तुम उन्हें मुझसे अधिक जानते हो ?

दुर्गपाल : मेरा उनसे कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था, केवल एक सामाजिक आदर्शों का सम्बन्ध था।

रुक्मिनी : मुझे वह दृश्य अब तक नहीं भूला; यहीं मैं एक दिन भिखारियों को दान बांटने आयी थी। और भिखारियों ने मेरे हाथ का दान लेना अस्वीकार किया···।

अर्जुन : मैं कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं जानता ! मैं केवल उतना ही जानता हूं, जो कृष्ण ने मुझे आज्ञा दे रखी है—यहां से यदुकुल की स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जाना।

रुक्मिनी : मैं जानती हूं उस आज्ञा का मर्म। महाराज कृष्ण इस नगर से केवल वेनुरती को बाहर निकालना चाहते थे, यदुकुल की शेष स्त्रियां केवल बहाना थीं।

[तेजी से भीतर चली जाती हैं।]

दुर्गपाल : हमारे और पूर्वजों के किये हुए सारे

पुण्य, जागो···! जागो···इस नगर पर···जागो पुण्य जागो···!

[अर्जुन का अन्तःपुर में प्रस्थान। वृद्ध का गान सुनायी पड़ता है।]

परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा
दोउ चातक, दोउ स्वाती, दोउ घन
दोउ दामिनी अमंदा !
दोउ अरविंद, दोउ अलि लंपट
दोउ लोहा, दोउ चुम्बक

[वेनुरती उस संगीत में जैसे बेसुध हो जाती है।]

दुर्गपाल : इस नगर के संगीत की देवी ! रात गहरी हो रही है···जाओ अन्तःपुर के दीप जलाओ, देवता तुम्हारी रक्षा करें।

वेनु : देवता !

दुर्गपाल : इस नगर के देवता।

वेनु : 'परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा'···यह कौन गा रहा था ?

दुर्गपाल : अन्तःपुर में जाओ, रात घिर रही है। निशाचरों के घूमने का समय हो गया।

वेनु : नगर के देवता कहां है ?

दुर्गपाल : यहां मत खड़ी रहो। गिद्ध उड़-उड़कर अब कंगूरों पर बैठने लगे

हैं। प्रजा के घरों पर यदुवंशी अब आक्रमण करना शुरू करेंगे। कहीं घर जलेगा, कहीं धर्म लुटेगा, कहीं हत्या होगी···

वेनु : मैं पूछती हूं—इस नगर के देवता कहां हैं ?

दुर्गपाल : पराजित हैं, पर वे हैं···!

वेनु : उन्हें कौन पराजित कर सकता है। मैं उन्हें देख रही हूं। युद्धरत हैं वे···(सहसा रुककर) मुझे वही गीत सुनाओ···

दुर्गपाल : गीत सुनने का समय नहीं।

वेनु : परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा
दोउ चातक, दोउ स्वाती, दोउ घन
दोउ दामिनी अमंदा···
दोउ अरविंद, दोउ अलि लंपट
दोउ लोहा, दोउ चुम्बक।

[वेनुरती अंदर चली जाती है। दुर्गपाल सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ पुकारता है।]

दुर्गपाल : सावधान···सावधान···सावधान!

[दूसरी ओर से वभ्रु के साथ कुछ यदुवंशियों का प्रवेश।]

वभ्रु : ओ, दुर्गपाल का बच्चा ! कहां है वह अर्जुन ! सुना है, वह यहां से यदुकुल की स्त्रियों को ले जाने के लिए

आया है !

दुर्गपाल : जबान सम्हालकर नहीं बोल सकते ?

वभ्रु : जबान नहीं है। (सब हंसते हैं)

वभ्रु : मामा से बोलो, महाराज कुमार वभ्रु आये हैं।

दुर्गपाल : महाराज कुमार प्रदुम्न हैं !

वभ्रु : (चिढ़ाकर) प···र···दुम्न है ···जैसे वही इन सबका बाप है।···जाओ, सीधे से आज्ञा पालन करो।

दुर्गपाल : राजा उग्रसेन मृत्यु-शैया पर पड़े हैं, उनकी मृत्यु होते ही, तुम्हीं लोगों के हाथ यह द्वारिका लूटी जायेगी। राजा का शव इसी किले में पड़ा होगा, उधर सिंहासन के लिए तुम्हीं लोग पागल कुत्तों की तरह लड़ोगे। तब मैं राजा के शव को कंधे पर उठाये हुए श्मशान जाऊंगा। और वहीं से कापालिक की तरह देखूंगा—इस किले की गुम्बदों और दीवारों पर बैठे हुए असंख्य गिद्ध···काल-समुद्र की लहरों में डूबती हुई यह जन्मभूमि द्वारिकापुरी !

वभ्रु : वाह, खूब बलबलाता है, ऊंट की नाईं। क्यों भाई ऊंट, मेरे दल में आ जाओ ना, क्या उसी दुर्गपाल के पद पर

जोंक की तरह चिपका है,···मैं तुझे अपनी पत्नी का कोतवाल बना दूंगा। मेरी पत्नी, शायद तुझे नहीं मालूम, महीनों हो जाते हैं मेरा मुंह तक नहीं देख पाती। और हम दोनों ये भी नहीं जानते, विरह किस चिड़िया का नाम है।

दुर्गपाल : (बीच में ही) बन्द करो ये बकवास !

पहला यदुवंशी : जानता है किसके सामने खड़ा है ?

वभ्रु : जो भी हो, है समझदार। बोलता भी अच्छा है।

दूसरा यदुवंशी : चुकुर-चुकुर लखै भी अच्छा है।

तीसरा यदुवंशी : तेरो नाम का है ?

दुर्गपाल : दुर्गपाल।

वभ्रु : ये तो तेरा पद है रे !

दुर्गपाल : वही मेरा नाम है।

वभ्रु : धत् तेरे समझदार की···ये तो बता अर्जुन कैसा आदमी है ?

दुर्गपाल : पता नहीं।

पहला यदुवंशी : लल्लू है, लल्लू बेचारा।

दूसरा यदुवंशी : अभी तो ये ऊंट दूध पीवै है।

वभ्रु : जा-जा, अर्जुन को बता, उसका बाप आया है।

दुर्गपाल : मैं तुम सबकी सूचना केवल प्रदुम्न को दूंगा—जो समुद्र तट पर बढ़ते

हुए काल से जूझ रहा है···ये लो स्वयं अर्जुन आ गये।

[दुर्गपाल दूर जा खड़ा होता है। अर्जुन आते हैं।]

वभ्रु : वाह, इसके मुखमंडल पर तो गजब की रासलीला हो रही है। ता ता धिन, ताता धिन। सुना है तुम यहां से सारी स्त्रियों को ले जाने आये हो? भई मेरी औरत को जरूर ले जाओ, औरत नहीं औरतों को ले जाओ, पांच-पांच रख छोड़ी है। आंख फाड़ि के का देख रहे हो? मेरे बाप ने तो सोलह हज्जार से भी ज्यादा···!

तीसरा यदुवंशी : मेरी बुढ़िया को भी जरूर ले जाओ।

पहला यदुवंशी : मेरी तो अभी जवान है मगर टर्र-टर्र बहुत करती है। किरपा करो वा पै भी, मो पै भी।

वभ्रु : हाय मारि कटारी मरि जाऊं।

अर्जुन : लाज करो लाज! वे सब विधवाएं हैं।

वभ्रु : अरे उन सबको फिर लाल चुनरिया पहनाई जायेगी।

[यदुवंशी 'हाय' करके हंस पड़ते हैं।]

अर्जुन : असभ्य, अधर्मी!

वभ्रु : विलासी शृंगारी पिता यदि देश की

सारी सुन्दरियों से विवाह रचा ले, और स्वयं चुपचाप स्वर्ग खिसक जाय तो···?

अर्जुन : मृत्युमुखी! तुम सबके सिर पर काल नाच रहा है।

वभ्रु : ओ हो! फिर तुम द्वारिका में यदुवंशियों का नाच देखने आये हो!··· यदुवंशी! इसे नाच दिखाओ!

[गले के पीछे लटकते हुए तरह-तरह के मुखौटों को यदुवंशी झट अपने मुख पर चढ़ा लेते हैं, और अर्जुन को घेरकर अजब ढंग से नाचते हैं। अर्जुन हतप्रभ है। दौड़ी हुई रुक्मिनी आती है।]

रुक्मिनी : रोको···रोको! यह सब क्या है वभ्रु?

वभ्रु : संस्कृति···इतिहास···परम्परा····· अतीत···स्वर्णयुग···महान लोग···!

[इसी बोल पर नाच की परिधि में अर्जुन घबरा जाते हैं। वह भागते हैं, पर नाचते हुए यदुवंशी उनका पीछा कर रहे हैं। वभ्रु की तेज हंसी, नाचते हुए यदुवंशियों के साथ वभ्रु का प्रस्थान।]

अर्जुन : कितना भयानक···!

रुक्मिनी : वभ्रु···केवल वभ्रु!

अर्जुन : दुर्गपाल, तुम वहां इस प्रकार चुपचाप

क्यों खड़े हो ?

रुक्मिनी : दुर्गपाल, तुम यहां उपस्थित हो और यदुवंशियों ने यहां···

दुर्गपाल : मैं यहां से कुछ और देख रहा हूं। अकेले प्रदुम्न काल समुद्र से विजयी होकर लौट रहे हैं। समुद्र अपनी सीमा में वापस जा रहा है। देखिए, आ रहे हैं वह विजयी प्रदुम्न।

रुक्मिनी : जय हो मेरे पुत्र की।

[भीतर से दौड़ी हुई वेनुरती आती है।]

वेनु : जय हो मेरे प्रियतम नायक की।

रुक्मिनी : स्वार्थी, धिनौनी, नायिका और रानी बनने के इसी भयंकर स्वार्थ ने इसे अंधी पिशाचिनी बनाया! पर मैं देखूंगी, मेरे जीते-जी यह नहीं हो सकता।

[रुक्मिनी का तेजी से प्रस्थान।]

वेनु : अर्जुन! महारानी को यह विश्वास दिलाओ, मैंने सहज ही वरण किया है, नाम, पद, स्वार्थ मेरे लिए अर्थ-हीन हैं।

अर्जुन : सारी कटुता तुम्हें ही सहनी होगी। सहने का आधार भी तुम्हारे पास है।

वेनु : आधार···!

[अर्जुन वेनुरती की उदास चुप्पी से घबराकर अंदर चले जाते हैं।]

वेनु : कुछ बोलो दुर्गपाल, नहीं तो यह चुप्पी मुझे निगल जायेगी। वह आ रहे थे, पर अब तक यहां क्यों नहीं पहुंचे ? वह कहां हैं ?

दुर्गपाल : धीरज धरो!

वेनु : ऐसा कहा है उन्होंने ?

दुर्गपाल : हां!

वेनु : मेरा सौभाग्य! मेरे अन्तःकरण का समुद्र भी अब शांत होगा···उनसे मिलन की भूख में जो एक ठण्डा भय है, उसे मैं अब इसी संगम में डुबो दूंगी।

दुर्गपाल : प्रदुम्न की जय।

[वेनु बढ़कर प्रदुम्न को अपने अंक में भर लेना चाहती है, पर प्रदुम्न वहीं जैसे गिरकर सीढ़ियों पर बैठ जाता है।]

वेनु : यह क्या ? पीठ पर इतना रक्त ? यह विश्वासघात किसने किया ?

प्रदुम्न : यहां विश्वासघात किसने नहीं किया ? मैं द्वारिकावासियों सहित काल समुद्र की लहरों के सामने खड़ा था। पीछे से किसी ने मुझ पर आक्रमण किया। समुद्र

हाहाकार कर हम पर टूट पड़ा। कितने निर्दोष जन, समुद्र की धार में बह गये।

दुर्गपाल : हर डरा हुआ आक्रामक होता है।

वेनु : समुद्र का हाहाकार, वायुमंडल में फिर गूंजने लगा।

प्रदुम्न : (उठते हुए) समुद्र का वही हाहाकार मैं हूं।

[उसी क्षण अन्तःपुर से रुदन स्वर उठता है। सब दौड़े हुए भीतर जाते हैं। सूने मंच पर थोड़ी देर बाद व्यासपुत्र दौड़ा हुआ आता है।]

व्यासपुत्र : महाराजा उग्रसेन का स्वर्गवास हो गया। लोगो, सावधान हो जाओ। राजद्वार पर मौत के बाजे बजने लगे। वभ्रु और साम्ब के बीच राजसिंहासन के लिए युद्ध छिड़ गया। भोज और शिनिवंशों में तलवारें खिंच गयीं। जागो द्वारिका के लोगो, अपने अधिकार के लिए जागो। अपने राष्ट्र के लिए जागो। कौन हो तुम्हारा राजा, इसका फैसला अब तुम करो। तुम कौन थे, अब क्या हो गये हो और क्या होना चाहते हो, अब समय आ गया है,

इसका उत्तर अब तुम्हीं दो।

[एक तरफ से चुपचाप जरा आता है और एकमात्र श्रोता बनकर सुनने लगता है। और जैसे ही व्यासपुत्र इसे देखकर चुप होता है, वैसे ही जरा व्यासपुत्र की अपने ढंग से नकल करने लगता है।]

व्यासपुत्र : तू भी फिर से आदमी बन सकता है। पहचान अपनी शक्ति, मांग अपने अधिकार को।

[जरा सहसा एक पत्थर निकालकर व्यासपुत्र को मारकर भागता है। व्यासपुत्र उसका पीछा करता हुआ चला जाता है। कुछ ही क्षण बाद साम्ब का पीछा करते हुए संगीकर का प्रवेश।]

साम्ब : (कृपाण ताने हुए) विश्वासघाती ! तू इतना नीच भी हो सकता है।

संगीकर : कुत्तों की मौत मारा जायेगा !

साम्ब : अभी मैं प्रदुम्न को सूचना पहुंचाता हूं···।

संगीकर : उसे अब तक खुद पता हो चुका है, मैं अब उस विलासी प्रदुम्न का सेनापति नहीं···मैं उसका शत्रु हूं। तेरी कुशलता इसी में है, तू उसकी पराजय में हमारा साथ दे।

साम्ब : नीच···विश्वासघाती···!

संगीकर : प्रेमी-प्रेमिकाओं के चोचलों से देश की रक्षा नहीं होगी। कोई प्रेम करे, सारा नगर उसमें नष्ट हो जाय, इससे ज्यादा शर्मनाक बात और क्या हो सकती है? यह प्रेम नहीं, लड़ाई है। इसमें बुद्धि का संघर्ष है, यह प्रेम नहीं विनाश है!

[दुर्गपाल के संग प्रदुम्न का प्रवेश।]

दुर्गपाल : यह है! देखो इसे!

संगीकर : हां-हां, मैं कहूंगा···वेनुरती इससे प्यार करती है···इस कृष्णमुख से!···तूने खुद अपनी आंखों से देखा है!

साम्ब : वह तेरा और वभ्रु का गंदा-घिनौना जाल था···!

संगीकर : और वह कैसा जाल है, जिसमें उस चुड़ैल ने इसको फांसा?

प्रदुम्न : बस···बस, मेरी आंखों के सामने से दूर हट जा!

संगीकर : मैं तेरी आंखों में ही बैठकर तुझ पर थूकूंगा!

प्रदुम्न : संगीकर!

संगीकर : मेरा नाम तेरा काल है।···सावधान, यह कृपाण तेरे उसी हृदय में वापस रख दूंगा, जहां से तूने कभी विश्वास

दिया, प्रेम दिया।

प्रदुम्न : बस···बस···

[प्रदुम्न एक ही प्रहार में संगीकर को गिरा देता है।]

संगीकर : यह प्रेम नहीं स्वार्थ है, अहंकार है, जिसने इतने अनजान, भोलेभाले लोगों की जानें लीं···! धिक्कार है तेरे उस पौरुष पर, जिस पर कभी मैंने गर्व किया था।

[आवेश में प्रदुम्न का मरते हुए संगीकर पर निर्मम प्रहार।]

साम्ब : यह अधर्म है!

प्रदुम्न : इसको प्रणाम करने दो!

[झुककर आंखें मूंदकर करुणा से]

मैं नहीं जानता क्या है धर्म
क्या है अधर्म
क्या है पुरुष, क्या है कापुरुष!
मैं हर क्षण बिना देखे ही कुछ देखता हूं
बिना किये ही कुछ करता हूं
मैं अक्षम्य, निर्दोष न सही
मैं कहीं विवश हूं
अक्षम्य हूं मैं
यही मेरा प्रणाम है
प्रणाम है!

[अंधकार। प्रकाश लौटते ही दुर्गपाल युद्ध के अस्त्र-शस्त्र लिये हुए मंच पर दौड़ा आता है। प्रदुम्न को पुकारता हुआ ढूंढ़ता है। एक ओर से प्रदुम्न का प्रवेश।]

प्रदुम्न : इस तरह किसे पुकार रहे हो ?

दुर्गपाल : और किसे पुकारूंगा ?

प्रदुम्न : हाथ जोड़ता हूं, मुझसे और प्रश्न मत करो ! संगीकर की लाश को मैं जितना ढंकता था, वह मुझसे उतना ही प्रश्न करता जा रहा था— क्या है तू ?', 'तेरे कर्म क्या हैं ?', 'इसका उद्देश्य ?', 'अमरत्व ?', 'काल के अलावा यहां कोई और भी अमर है क्या ?'

दुर्गपाल : आर्य, जागिए। द्वारिकावासियों को लेकर इन शत्रुओं पर सिंह की तरह टूट पड़िए। द्वारिका का खाली सिंहासन आपकी राह देख रहा है।

प्रदुम्न : संगीकर···!

दुर्गपाल : ये लीजिए अपने अस्त्र-शस्त्र !

प्रदुम्न : (अस्त्र धारण करता हुआ) मेरे भुजपाश, अंक में लिपटे हुए संशय, इन अस्त्रों से ढंक जायेंगे, पर जो मेरे गहन अंतस में बैठे हैं, वे छायाचित्रों की तरह उभरकर मेरे ही सामने आयेंगे,

उन्हें कौन अस्त्र काटेगा ? जहां शत्रु अदृश्य हैं, वे युद्ध इन अस्त्रों से किस तरह लड़े जायेंगे ? जो अस्त्र मुझे हर क्षण बांधते जा रहे हैं, लगता है यही मेरी विजय में पराजय के साक्षी होंगे। नहीं-नहीं-नहीं। इन्हीं अन्त-विरोधों के बीच तुझे पाऊंगा मैं ! पर यदि उस विजय में भी शंका न टूटी, तब···तब !···सुनो···। दुर्ग और राजमहल के सारे द्वार और गवाक्ष बन्द रखना। कहीं से यदि वेनुरती ने झांककर मुझे देखा, तो मैं यहां जीवित नहीं लौटूंगा।

दुर्गपाल : निश्चय ही आप विजयी होंगे। जिस युद्ध का मूल आपके भीतर है, वही आपको शक्ति देगा। इस नगर में हमारे पूर्वजों से अर्जित सारा पुण्य आपके माथे पर हो। आपके बाहुबल में ऋषियों के आशीष हों।

[युद्धास्त्र धारण कर प्रदुम्न का तेजी से जाना। दुर्गपाल उसी दिशा में अपलक देखता है, तभी पीछे से वेनुरती आती है।]

वेनु : प्रदुम्न ! कहां गए ?

दुर्गपाल : नहीं-नहीं, तुम्हें चुपचाप अन्तःपुर में

ही रहना होगा।

वेनु : यह आज्ञा उनकी है ?

दुर्गपाल : तुम्हें चुप रहना होगा।

वेनु : यह जानने के बाद कि मेरे स्वामी कहां गये ?

दुर्गपाल : बाहर युद्ध करने ?···बस आगे कोई प्रश्न नहीं। तुम्हें चुपचाप अन्तःपुर में जाना होगा···

वेनु : मौन···जिसे मैं हर क्षण घृणा करती हूं।

[वेनुरती को संग लिये हुए दुर्गपाल का प्रस्थान। सूने मंच पर, कुछ ही क्षणों बाद प्रसन्न मुख जरा आता है।]

जरा : (इधर-उधर देखता हुआ) आह ! युद्ध ···नगर···भर में। आ···ह····· आह !

[पशुवत् प्रसन्न चेष्टाएं करता है। दूसरी ओर से व्यासपुत्र आता है।]

जरा : ओ ओ ओ ऊ हू हू !

व्यासपुत्र : बोल ! विजय किसकी होगी ?

जरा : जो हो हो हो होगा।

व्यासपुत्र : वो कौन है ?

जरा : मैं मैं मैं।

व्यासपुत्र : तू किसके पक्ष में है ?

[जरा अजीब ढंग से हंसता है।]

व्यासपुत्र : सुना है तू पहले बोलता था !

[जरा कृष्णवध का वही अभिनय शुरू करता है। व्यासपुत्र भयभीत भागता है। जरा हंसता हुआ उसके पीछे दौड़ता है।]

चौथा दृश्य

समय : संध्या।

स्थान : वही दुर्ग का भाग।

[मंच पर आते-जाते और लड़ते हुए यदुवंशियों के साथ साम्ब, वभ्रु और प्रदुम्न दिखाई पड़ते हैं और फिर अंधकार में खो जाते हैं। कुछ क्षणों बाद सूने मंच पर अकेले दौड़ते हुए अर्जुन आते हैं।]

अर्जुन : पता नहीं यह युद्ध कब तक चलेगा?

[तेजी से दुर्गपाल का प्रवेश।]

दुर्गपाल : मैं कब से आपको ढूंढ़ रहा हूं। आपको यहां से यदुकुल की स्त्रियों को ले जाना है!

अर्जुन : कहां?···क्यों?

दुर्गपाल : अब आपमें जो नया मोह और प्रश्न जगा है उसके उत्तर के लिए अब यहां कृष्ण नहीं। यह आपका सौभाग्य है, आज पहली बार आपको अपने प्रश्नों से अकेले जूझने को मिला है। यह बहुत अच्छा अवसर है,

सारे यदुवंशी युद्धरत हैं, स्त्रियों को लेकर चुपचाप निकल जाइए।

अर्जुन : कौन हो तुम?

दुर्गपाल : बस, एक नागरिक।

अर्जुन : तुम हर समय मुझे आश्चर्य में डाल देते हो! जहां सब कुछ टूट चुका है, तुम···।

दुर्गपाल : मेरे लिए कहीं कुछ भी टूटा नहीं।

अर्जुन : धन्य हो! नहीं तो सोचता था अकेले ही चुपचाप यहां से भाग जाऊंगा!

दुर्गपाल : सावधान! मेरे साथ आइए।

[दोनों जाते हैं। क्षणिक अंधकार के बाद जैसे ही प्रकाश लौटता है, रुक्मिनी के संग अर्जुन आते हैं।]

रुक्मिनी : यह मेरी आज्ञा है, हमारे साथ वेनुरती को भी जाना होगा।

अर्जुन : इससे बहुत बुरा होगा।

रुक्मिनी : प्रदुम्न विजयी होकर द्वारिका का राजा होगा, इसीलिए यह और भी आवश्यक है, वेनुरती यहां से दूर कर दी जाय, नहीं तो प्रदुम्न इसके प्रेमजाल में फंसकर निरंकुश होगा।

अर्जुन : यह विश्वासघात मुझसे मत कराओ महारानी!

रुक्मिनी : अगर आप सचमुच कृष्ण के सखा हैं तो आपको यह कार्य करना ही होगा, मैं वेनुरती को द्वारिका की महारानी नहीं बनने दूंगी।

[रुक्मिनी तेजी से भीतर जाने लगती है।]

अर्जुन : सुनो···सुनो महारानी।

[जाती हुई रुक्मिनी के पीछे अर्जुन चले जाते हैं। कुछ ही क्षणों बाद स्त्री-वेश में साहूकार का प्रवेश। प्रदुम्न के वही दोनों सैनिक उसके पीछे लगे हैं।]

पहला : अरे दइआ रे दइआ !

दूसरा : हाय ! बाजूबंद खुलि-खुलि जाइ।

पहला : गोरी धीरे चलौ, कमरिया मा झटका न आइ जाय।

स्त्री : लुच्चे कहीं के, छोड़ो मेरी डगर।

पहला : हमें छोड़ि कहां जाइ रही हो ?

स्त्री : आंखि फूटि गई है, देखते नहीं अन्तःपुर जा रही हूं। कहती हूं, छाड़ि दो मोरी डगर।

दूसरा : अन्तःपुर से आगे कहां जाओगी, हाय मोरी दइआ।

स्त्री : निर्लज्ज, अबला स्त्री को ई माफिक

छेड़ते हुए लाज नहीं आवै ? हटते हो कि नाहीं।

पहला : आंचर में का छिपा रक्खा है ?

दूसरा : हाय गजब रे गजब !

[स्त्री का वस्त्र दोनों खींच लेते हैं, उसका पुरुष रूप प्रकट हो जाता है। गठरी के धन को लूटते हैं। एक ने उसका मुंह दबा रखा है।]

दूसरा : कित्ता सारा धन जोड़ रक्खा है— इधर लड़ाई होइ रही थी, इधर ये धन बना रहा था।

[साहूकार संघर्ष करता है।]

दूसरा : घोंच दे गला।

पहला : (गला दबोच देता है) मरि गया !

दूसरा : खैंचि के फैंक देउ।

[पहला खींचकर उसे बाहर कर आता है। दोनों धन लेकर चम्पत हो जाते हैं। पृष्ठभूमि में युद्ध चल रहा है। कुछ ही क्षणों बाद भीतर से श्वेत वस्त्रों में अर्जुन के साथ यदुकुल की स्त्रियां निकलती हैं। सबसे आगे रुक्मिनी है। और सबसे पीछे मुख और हाथ से बंधी हुई वेनुरती है। चलती हुई स्त्रियां एकाएक करुण स्वर में गा उठती हैं।]

हिरना रे···

समुझि समुझि पग धरना।
एक बन चरना, दुसर बन चरना
तिसरे मा पगु नहिं धरना रे—
हिरनारे···

[यात्रा में सब चली जाती हैं।]

पांचवां दृश्य

स्थान : वही।

समय : पिछले दृश्य से आगे।

[राजमुकुट धारण किये हुए यदुवंशियों के साथ प्रदुम्न आता है।]

पहला यदुवंशी : (ध्वजाधारी) द्वारिकाधीश महाराजा प्रदुम्न की जै !

[प्रदुम्न थका हुआ वहीं सीढ़ियों पर बैठता है।]

प्रदुम्न : दुर्गपाल कहां है ?

[यदुवंशी दुर्गपाल को पुकारते हैं, पर कोई उत्तर नहीं।]

प्रदुम्न : वेनुरती को बुलाओ।

[एक भीतर दौड़ता है, शेष निःशब्द बातें करते हैं, यदुवंशी भीतर से वापस आता है।]

एक यदुवंशी : सारा महल सूना पड़ा है महाराज !

[प्रदुम्न भीतर दौड़ता है।]

दूसरा : कहीं कोई नहीं दीखता !

तीसरा : बड़ा अचरज है।

[भीतर से प्रदुम्न लौटता है।]

प्रदुम्न : क्या यह सच है ?

एक यदुवंशी : बिल्कुल सच है महाराज !

दूसरा : लगता है, यदु स्त्रियों के साथ महारानी वेनुरती भी यहां से ले जायी गयी हैं!

प्रदुम्न : वह स्वय गयी हो तो ? (सहसा) कौन है वह ? किसने झांका ? किसका मुख कौंधा? कौन है ? क्या ? सब व्यर्थ है। ···किसने कहा सब व्यर्थ है ? बोलो, किसने कहा यह? ···बताओ···बताओ मैं कौन हूं? ···मैं हूं व्यर्थ! यह विजय, यह राजमुकुट, यह ध्वज···सब झूठ है। कोई मुझसे छीन ले मेरा सारा अतीत! ···मुझे उन स्मृतियों से काट-कर अलग कर दे।···आह, मेरा सारा अस्तित्व ही झूठा था।···इन दिशाओं में खोयी हुई वेनु !सुनो, तूने यह क्या किया ? मुझे उत्तर नहीं, प्रश्न चाहिए ···मुझसे प्रश्न करो ! तू इस तरह क्यों चली गयी ? क्या यही था मेरा सत्य ? कृष्ण ने तेरे द्वारा मुझसे बदला लिया है ? ···आओ, हम एक-दूसरे से प्रश्न करें ! आओ, मुझसे प्रश्न करो—उसी युधिष्ठिर की तरह, 'धर्म क्या है ?' मेरा उत्तर वही प्रश्न होगा—वेनु तुम क्या हो ? ···वेनु,

···मेरी शरशय्या के पास कृष्ण की तरह वही मोह और सत्य का प्रश्न करो···मैं सेमल पुष्प और वायु का प्रसंग बनकर बिखर जाऊं !

पहला यदुवंशी : महाराज प्रदुम्न !

प्रदुम्न : मत लो यह नाम ! यह मेरा नाम नहीं ! वे सारे शब्द झूठे थे।

[व्यासपुत्र सहसा आता है।]

प्रदुम्न : तुम वेनु को जानते हो ?

व्यासपुत्र : महाराज की जय हो !

प्रदुम्न : यही पूछा था ?

व्यासपुत्र : महारानी वेनुरती यदुकुल की स्त्रियों के साथ हस्तिनापुर चली गयीं।

प्रदुम्न : महारानी नहीं, मैं वेनु को पूछ रहा हूं।

व्यासपुत्र : हां, वही !

प्रदुम्न : ओह ! कोई नहीं समझता। दोनों सदा दो हैं। दोउ···दोउ···दोउ···।

व्यासपुत्र : वह सारा प्रसंग ही विनाशकारी था। स्त्री का रहस्य आप नहीं जानते थे महाराज !

प्रदुम्न : तू कुछ नहीं जानता। वेनु मेरे अभि-सार में गयी है। विरह की वह लम्बी रात अब बीतने को है। मैं यहीं से हाथ उठाकर उसे छू लूंगा। रात

अब बीतने को है।

[जाने लगता है। नीचे रखे हुए राजमुकुट को एक यदुवंशी उठाने लगता है।]

प्रद्युम्न : मत छूओ, पड़ा रहने दो यहीं।

[प्रद्युम्न के संग यदुवंशी चले जाते हैं। व्यासपुत्र चारों ओर देखकर राजमुकुट को उठाने लगता है, तभी दुर्गपाल आता है।]

दुर्गपाल : चोर कहीं का।

व्यासपुत्र : मैं ले नहीं रहा था, इसकी सुन्दरता देख रहा था। हमारे देश की कला कितनी महान है !

दुर्गपाल : तू अब भी यहां से भागता है या नहीं ?

व्यासपुत्र : मैं तो सबका सेवक हूं, सेवा ही मेरा धर्म है। इस मुकुट को सम्हाल कर रखना। वभ्रु कहीं छीन न ले। वह हार गया है पर मरा नहीं है।

[व्यासपुत्र तेजी से जाता है, दुर्गपाल राजमुकुट को निहारता है।]

दुर्गपाल : यह राजमुकुट उसी का है, जिसने इसे ठीकरे की तरह त्यागा है।

[इसी बीच जरा छिपा हुआ आता है और दुर्गपाल को पीछे से पकड़कर गला दबोच देता है। दुर्गपाल संघर्ष करता है पर

अन्ततः जरा विजयी होता है।]

जरा : (दुर्गपाल के शव से खेलता हुआ) ई ई ऊ ऊ हू हू हू !

[फिर मुकुट को अपने सिर पर रख नाचता है।]

तीसरा अंक

[पथ में यदु स्त्रियों के साथ अर्जुन चल रहे हैं। स्त्रियां थक गयी हैं। रुक्मिनी के साथ कुछ स्त्रियां गा रही हैं।]

माधव, कि कहब दैव पिपाक
पथ आगमन कथा कतो कहि तहु
जो होइत मुख लाख
मंदिर तजि जब पद चारि···

[यात्रा रुक जाती है। दृश्य में एक अजब-सी आकृति का वृक्ष खड़ा है।]

अर्जुन : रात हो गयी है, आज की यात्रा का पड़ाव यहीं होगा।

रुक्मिनी : कहीं से जल का प्रबन्ध करना होगा।

अर्जुन : आप सब विश्राम कीजिए, मैं जल लेने जा रहा हूं।

[स्त्रियां बैठ जाती हैं। अर्जुन जल-पात्र लेकर बाहर जाते हैं।]

आहुकी : आज कौन-सी तिथि है, महारानी ?

रुक्मिनी : कृष्ण-पक्ष की सप्तमी है आज।

दूसरी यादवी : कृष्ण-पक्ष ?

तीसरी यादवी : यहीं कहीं वह स्थान है, जहां कृष्ण को उस बहेलिये ने मारा था।

आहुकी : यह कैसा वृक्ष है ?

दूसरी यादवी : उधर मत देख।

तीसरी यादवी : यह वृक्ष हमें घूर रहा है।

रुक्मिनी : तुम सब क्या चर्चा कर रही हो ?

आहुकी : कुछ नहीं, महारानी !

रुक्मिनी : भय तो नहीं लग रहा ?

दूसरी यादवी : अब कैसा भय ?

[सब चुप रह जाती हैं, तभी अर्जुन जल लेकर आते हैं। स्त्रियां जल पीती हैं।]

अर्जुन : वेनुरती, लो तुम भी जल पियो।

[वेनुरती सबसे दूर अलग बैठी है, कुछ नहीं बोलती।]

अर्जुन : दो दिन हो गये। तुमने कुछ भी नहीं खाया-पिया।

वेनु : इन सारी स्त्रियों से कहो, ये रोएं, ताकि मेरे चारो ओर की तनी हुई चुप्पी टूट जाय। पिछले दो दिनों से मेरी रात में प्रातःकाल नहीं हुआ। किसी ने प्रकृति की हत्या करनी चाही है !

अर्जुन : वेनुरती, विश्राम करो।

वेनु : यह रात कितनी गहरी और सूनी है—देवालय के उस गलियारे की

तरह, जहां से सारे यात्री परिक्रमा पूरी कर चले गये हैं। ऊंचे पर्वत-शिखर पर बना एक सूना मंदिर, चारो ओर बर्फ से ढंक गया है। एक यात्री वहां आया होगा और उस सूने देवालय में उसकी पुकार कांपी होगी, उसका विश्वास टूटा होगा। सारा भागवत प्रेम, सेमल पुष्प की तरह हवा में बिखर गया होगा।

अर्जुन : शांत हो जाओ, वेनु !

वेनु : शब्द से अर्थ की हत्या करने वाले श्रेष्ठ लोग, तुममें इतना भी शील नहीं कि हमें विदा का एक क्षण तो देते।

रुक्मिनी : इस तरह यह वाचाल चुप नहीं होगी !

वेनु : मैं अंतिम सांस तक इस अंधेरी रात में अपने सूरज को पुकारती रहूंगी। बस, अब इतना ही शेष है।

[वही वृद्ध गाता हुआ दिखाई देता है।]

परस्पर दोउ चकोर
दोउ चंदा।

रुक्मिनी : बन्द करो यह गान !

वेनु : यह गान होगा। यही मेरा शेष अस्तित्व है। गाओ गान···गाओ··· गान···गाओ !

वृद्ध : (गाता है)

परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा
दोउ चातक, दोउ स्वाती, दोउ घन
दोउ दामिनी अमंदा !

वेनु : दोउ···दोउ···दोउ !

[यह कहती हुई वेनुरती वहां से भागना चाहती है, अर्जुन उसे रोक लेते हैं।]

वेनु : मैं इसी टूटते संगीत-लय के सहारे, अपने उस सूने अन्तःपुर में जाऊंगी, मुझे जाने दो ! जाने दो···!

रुक्मिनी : यह पागल हो गयी, यही थी इसकी नियति !

वृद्ध : (गा पड़ता है)

कृष्ण तनय होइहै पति तोरा
बचन अन्यथा जाहि न मोरा।

रुक्मिनी : नहीं···नहीं···नहीं ! ऋषियों की वह देववाणी झूठी है। यह इसी की कल्पना है, अपने स्वार्थ के लिए यह प्रपंच फैला रखा है।

वृद्ध : अगर यह झूठ है, तो वह भी झूठ ही है कि वेनुरती कृष्ण की पत्नी थी।

रुक्मिनी : नराधम, मैं तेरी जबान खींच लूंगी।

वृद्ध : मैं अपने गूंगे स्वर में ही गाऊंगा।

वेनु : उन्हें जाकर मेरी सूचना दो। वे मुझे इसी अंधकार में ढूंढ़ रहे होंगे।

रुक्मिनी : रुको ! इससे सबका अमंगल होगा।

वृद्ध : पर मेरा मंगल होगा।

[तेजी से जाता है। उसका गान सुनायी पड़ता है—परस्पर दोउ चकोर···]

रुक्मिनी : अर्जुन ! पहरा दो···कल की यात्रा के लिए विश्राम आवश्यक है।

[सारी स्त्रियां विश्राम करती हैं। अर्जुन पहरे पर हैं। वेनुरती मूर्तिवत् बैठी है। आज रुक्मिनी भी नहीं विश्राम कर पा रही है।]

अर्जुन : महारानी रुक्मिनी !

रुक्मिनी : चुप है।

अर्जुन : विश्राम कीजिए।

रुक्मिनी : प्रदुम्न मेरी आंखों में चल रहा है। इस भयानक जंगल में वह न जाने कहां भटकता होगा। इस जंगल में बहेलिये होंगे। अपने पिता कृष्ण की तरह वह कहीं थककर विश्राम न करने लगे। मेरे मन का भय जरा बनकर मुझे घूर रहा है। मेरा सारा विरोध और संघर्ष अपने से था, पर

मैं उसे प्रकट करती थी अपने ही उसी पुत्र पर।

[रो पड़ती है।]

वेनु : डरो नहीं, मैं कुछ नहीं बोलूंगी।

[रुक्मिनी चुप है।]

वेनु : प्रदुम्न-जननी !

रुक्मिनी : मैं भी एक उदाहरण हूं, उस भागवत-प्रेम का। कृष्ण ने जिस तरह मेरा वरण किया, वह भी उसी भागवत का एक अध्याय था। मैंने उसी के लिए कितना-कितना सहा है, मान-अपमान, दुःख, अकेलापन·····मैं उन्हें कभी कुछ कह भी तो नहीं सकती थी। मैं उनकी पटरानी थी। पटरानी क्या होती है, इसे कौन जानेगा। पटरानी, रानी, फिर रानी और हजारों रानियों की सौत। ये सब आज किससे कह रही हूं ! मैं पटरानी हूं, मुझे उसकी मर्यादा में ही रहना होगा। मुझे किसने दी यह भूमिका ? एक ओर भागवत पति, दूसरी ओर भागवत पुत्र···।

अर्जुन : शान्त हो, महारानी ! कोई उधर आ रहा है।

रुक्मिनी : कौन है ?

अर्जुन : लगता है व्यासपुत्र है।

[व्यासपुत्र आता है।]

अर्जुन : यहां इस तरह आने का कारण ?

[व्यासपुत्र चुप है।]

अर्जुन : तुम्हारे इतिहास-लेखन की सामग्री अभी पूरी नहीं हुई ?

व्यासपुत्र : द्वारिका समाप्त हो गयी।

[सारी स्त्रियां रो पड़ती हैं।]

रुक्मिणी : यही देखने द्वारिका आया था।

[एक गहरा सन्नाटा खिंच गया है। स्त्रियां निःशब्द रो रही हैं। सहसा साम्ब आता है, उसके हाथ में वही राजमुकुट है।]

रुक्मिनी : साम्ब

साम्ब : महारानी !

रुक्मिनी : हमारी द्वारिका !

[रो पड़ती है।]

उसके विनाश में कौन उत्तरदायी नहीं ? कौन निर्दोष था उस नगर में ? धिक्कार है इस जीवन को, जो अपनी मातृभूमि बिना जीवित है !

साम्ब : जो द्वारिका में घटा है, वह कहीं और न घटे। (रुककर) युद्ध में प्रदुम्न की विजय हुई। वह राजमुकुट पहने दुर्ग में आये, राजमहल को सूना देखा, फिर जैसे विक्षिप्त हो गये। इस

राजमुकुट को वहीं सीढ़ियों पर फेंककर वेनुरती को ढूंढ़ने चले गये। यह मुकुट जरा अपने सिर पर रखे घूम रहा था। और यह व्यासपुत्र, इसकी दोनों आंखें निकाल लेनी चाहिए। इसने वभ्रु को सूचना दी, उसने अपनी बची हुई शक्ति से मुझ पर आक्रमण किया। असफल होकर उसने द्वारिका को लूटा, और उसमें आग लगा दी।

[व्यासपुत्र भागने लगता है साम्ब उसे घेर लेता है।]

साम्ब : तू अब मुझसे भागकर नहीं जा सकता। सुन ले अपना इतिहास··· नीचे काल समुद्र था, अथाह पानी, ऊपर धधकती आग। नगर में कोई भी वृद्ध-शिशु बच नहीं पाया।

वेनु : द्वारिका के अंतिम विनाश के कारण, इस यात्रा के परोक्ष में तुम्हें कृष्ण की यही आज्ञा थी न !

अर्जुन : लगता है, वही जरा हम सबमें समा गया।

वेनु : केवल उनमें, जो अंधकार और प्रकाश में भेद नहीं कर पाये। चारों ओर वही दो था, पर उन दो में

अपने विवेक से एक का साहसपूर्ण चुनाव करने वाला बार-बार उसी द्वारिका से निर्वासित हुआ। साम्ब, कहां है प्रदुम्न ?

साम्ब : यही व्यासपुत्र बताएगा। सारी सूचना यही रखता है। बता, वह कहां है ?

व्यासपुत्र : प्रदुम्न अपनी वेनुरती के लिए आक्रमण करने आ रहा है।

साम्ब : झूठा विश्वासघाती ! अब भी तुझे वभ्रु और प्रदुम्न में अन्तर नहीं दीखा ! तो इसका तात्पर्य यह है कि वभ्रु आक्रमण करेगा, और तू यहां से भागकर उसे सारी स्थिति की सूचना देगा।

व्यासपुत्र : नहीं, अब मैं यहां से अपने नगर चला जाऊंगा।

साम्ब : दूसरों के नगर का विनाश करके !···यही है तेरे इतिहासकार का विवेक। इसी शापित मन से तू द्वारिका में इतिहास रचने आया था। शब्द···केवल शब्द···।

व्यासपुत्र : नहीं···नहीं···!

[भागना चाहता है।]

साम्ब : भागने की कोशिश मत करना !

व्यासपुत्र : मैं निर्दोष हूं।

साम्ब : द्वारिका में आकर केवल भ्रम और असंगतियां फैलायीं। जरा और वभ्रु के पक्षधर, आज मैं तेरी कलंकित अभिशप्त वाणी सदा के लिए चुप कर दूंगा।

[व्यासपुत्र भागता है। कृपाण ताने साम्ब उस पर प्रहार करता है। व्यासपुत्र मारा जाता है। साम्ब लौटता है।]

साम्ब : यह मुकुट कहां रखूं ? किसे दूं ?

अर्जुन : मेरे पास मत आना। तूने ब्रह्महत्या की है।

साम्ब : यह लो मुकुट, वेनुरती, मुझे आज्ञा दो !

वेनु : मुझे नहीं चाहिए मुकुट, मुझे उस जंगल में छोड़ दो, जहां मेरा सूर्य उगने को है।

साम्ब : यह मुकुट प्रदुम्न का है। इसे अपने पास सुरक्षित रखो।

[वेनुरती मुकुट लेती है।]

साम्ब : वभ्रु यहां आक्रमण करने आ रहा है। उसे विश्वास है, जहां वेनुरती होगी, वहां प्रदुम्न अवश्य आएगा।

रुक्मिनी : वभ्रु हम पर आक्रमण करेगा ?

अर्जुन, उठाओ गांडीव और युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ !

अर्जुन : मैं असमर्थ हूं महारानी ! मुझसे अब यह गांडीव नहीं उठता । मैं इन सारे प्रसंगों को नहीं समझ पा रहा । लगता है, इतिहास का रथ मुझे कुचलता हुआ बहुत आगे निकल गया···।

[गांडीव वहीं छोड़कर अर्जुन तेजी से बाहर निकल जाते हैं । साम्ब पुकारता है ।]

साम्ब : रुको, अर्जुन ! रुको···(वापस आता है) अपने दायित्व से भाग जाना, गीता के कर्मयोग का यही रहस्य था क्या ?

रुक्मिनी : यह भागना नहीं, अपने को स्वीकार करना है । सबकी अपनी-अपनी गीता है ।

साम्ब : तुम सब अकेली जाओगी हस्तिनापुर ?

रुक्मिनी : जाना तो सदा अकेले ही होता है ।

साम्ब : मैं इस जंगल में प्रदुम्न को ढूंढ़कर यहां लाऊंगा और जंगल में उस पथ पर आग लगा दूंगा, जिधर से यहां वभ्रु आक्रमण करने आ रहा है ।

[तेजी से बाहर निकल जाता है ।]

रुक्मिनी : वभ्रु हम पर आक्रमण करेगा !

वेनु : कौन ? लगता है यहां कोई आ रहा है । (भयभीत) मैं जिसके अभिसार में यहां युगों से खड़ी हूं, उसके आने की आहट से मुझे डर क्यों लग रहा है ?

[रुक्मिनी के पास दौड़ती है ।]

मां, मुझे अपने अंक में छिपा लो !

रुक्मिनी : तूने मुझे मां कहा ? तुझे आज मां का अर्थ अनुभूत हुआ ! अब भी समय है, जहां तू उस झूठ से मुक्त होकर हम सबकी रक्षा कर सकती है ।

वेनु : किंतु यदि सच ही झूठ है, तो हमारा रक्षक वही झूठ होगा···

[प्रदुम्न आता है, उसे देखकर वेनुरती भयभीत हो जाती है ।]

रुक्मिनी : कौन ?

प्रदुम्न : कौन ?

वेनुरती : प्रदुम्न !

प्रदुम्न : मुझे उत्तर दो मैं कौन हूं ?

वेनु : मेरे कामदेव···मेरे अनंग···मेरे यदु ···प्रदुम्न !

प्रदुम्न : इतनी लम्बी यात्रा क्यों ?

वेनु : नहीं-नहीं, मेरे समीप मत आओ,

पहले मैं लज्जित थी, आज भयभीत हूं।

प्रद्युम्न : पहले मैं संशय था, आज घृणा हूं। तूने मुझसे विश्वासघात किया। मुझे युद्ध में झोंककर स्वयं भाग निकली।

[वेनु चुपचाप प्रद्युम्न के पास आने लगती है।]

प्रद्युम्न : मेरे समीप आने की अब कोशिश मत करना!

वेनु : चुप क्यों हो गये? पूछो अपनी जननी से, मैं यहां पशुवत बांधकर ले आयी गयी।

प्रद्युम्न : मेरे सारे विश्वास मेरे शत्रु थे!

वेनु : फिर भी मैं वही विश्वास हूं।

प्रद्युम्न : तूने सदा मेरे विश्वास के प्रति युद्ध किया। इस यात्रा के विरुद्ध क्यों नहीं किया?

वेनु : मैं इन्हीं सारे प्रश्नों के सागर को तैर यहां अभिसार के लिए आयी थी, कि इस निर्जन पथ पर तुम आओगे। मेरे प्राण! मैं हर युग में पथ निहारती खड़ी रह जाती थी; तुम पथ पर चुपचाप बढ़ जाते थे; कभी ऋतुराज बनकर, कभी सूक्ष्म होकर। इस बार पथ पर मैं बढ़ आयी,

ताकि मैं तुम्हें प्राप्त कर सकूं। यह देखो मेरी बांहों में तुम्हारे शरीर का पराग, यह देखो मेरी आंखों में तुम्हारे सूक्ष्म का विप्रलम्भ! देखो मेरे वक्ष पर तुम्हारे ये आघात—वही कमल इन गहराइयों में तैरता है, जिसके पराग-कोष में बिजली है—आंधी है! तुम्हारे केतु की वह मछली पंख फैलाए खड़ी है, आओ, हम इसे पकड़ लें!

[दौड़कर प्रद्युम्न को अपनी बांहों में भर लेती है।]

रुक्मिनी : सावधान! वभ्रु तुम पर आक्रमण करने आ रहा है और इस क्षण यह तुम्हें निर्बल बनाना चाहती है।

प्रद्युम्न : मैं स्वयं नहीं हूं अपने पक्ष में!

रुक्मिनी : ऐसे मत बोलो!

प्रद्युम्न : मेरी जननी की छाया तक मुझसे घृणा करती है।

रुक्मिनी : कृष्ण के पक्ष में और कोई नहीं था।

[प्रद्युम्न बढ़कर रुक्मिनी के चरणों में अपना माथा गाड़ देता है।]

प्रद्युम्न : मुझे निर्भय करो।

रुक्मिनी : वही द्वारिका, तेरी जननी, सदा तेरी आंखों में थी!

प्रदुम्न : और मैं सदा मां से लड़ता रहा !

रुक्मिनी : (सहसा) उठो, वह युद्ध अभी शेष है। मां के प्रियतम के विरुद्ध सारी प्रकृति है, उठो विजयी हो !

[सैनिकों सहित सहसा वभ्रु आता है।]

प्रदुम्न : क्या है ? क्या चाहते हो ? बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ? यह लो द्वारिका का राजमुकुट ! (उठाकर फेंकता है, रुक्मिनी वभ्रु से आगे दौड़कर मुकुट को ले लेती है।) दे दो इस भूखे को।

रुक्मिनी : द्वारिका के राजमुकुट का अधिकारी यह हत्यारा नहीं हो सकता !

वभ्रु : द्वारिका अब नहीं है !

रुक्मिनी : द्वारिका हमारी आखों में है।

वभ्रु : कुछ दिखायी पड़ रहा है ?

रुक्मिनी : यदू, उठा अस्त्र, और इसे समाप्त कर !

वभ्रु : पकड़ लो वेनुरती को !

आहुकी : नहीं-नहीं···नहीं !

वभ्रु : अरे यह भिखारिन भी है ! तेरे पेट का वह बच्चा कहां गया ?

वेनु : (अर्जुन की तलवार उठाकर) सावधान !

वभ्रु : फोड़ दो आंखें।

[यदुवंशी आवेश में बढ़ते हैं। वेनु के सामने आहुकी फाट पड़ती है। यदुवंशी

क्रोध में उस पर प्रहार करते हैं। उसे खींच कर एक ओर करते हैं। इस निर्मम संघर्ष में आहत आहुकी के गर्भ से शिशु पैदा होता है। आहुकी की मृत्यु होती है।]

कई यादवी : आहुकी ने शिशु को जन्म दिया··· आहुकी मर गयी···! आहुकी···

रुक्मिनी : जै द्वारिकानाथ !

वेनु : यदू, टूट पड़ो इन राक्षसों पर !

[कृपाण युद्ध। वेनु सैनिकों से लड़ रही है, प्रदुम्न वभ्रु से लड़ रहा है।]

रुक्मिनी : यदू, तेरी भुजाओं में शत-शत देवताओं का बल हो ! तेरे वक्ष में असंख्य यदुवंशियों की अजेय शक्ति हो। मेरे सतीत्व का प्रकाश तेरी आंखों में हो ! तेरी रक्षा में सुदर्शन चक्र हो··· तेरे प्रहार में गांडीव का तेज हो ! तेरे माथे पर असंख्य माताओं के आशीष हैं···

[युद्ध में वेनुरती घायल होती है। यदुवंशियों सहित वभ्रु को मारता हुआ प्रदुम्न आगे बढ़ता हुआ बाहर निकल जाता है। और बाहर युद्ध में घायल हो टूटी तलवार लिये आता है।]

वेनु : रात बीतने को है, सूर्य, मेरे पास आओ। पर्वत-शिखर पर अब बर्फ

पिघल रही है। प्रलय मेरी मुट्ठी में चुप है। कमल-कोष में चांद उगने को है। वह मछली अब पंख फैलाये है।

प्रदुम्न : उस कमल ने द्वारिका पर अग्निवर्षा की!

वेनु : वह मछली अब मेरी आंखों में है!

प्रदुम्न : देखो, चारों ओर असंख्य यदुवंशी हमें घेरे खड़े हैं।

वेनु : चारों ओर वही सुन्दरियां हमें निहार रही हैं।

प्रदुम्न : वे माताएं हैं!

वेनु : तुम्हीं उनके गौरव हो!

प्रदुम्न : गौरव आत्मसमर्पण में था, तुममें सदा प्रश्न था।

वेनु : वह तुम्हीं थे!

प्रदुम्न : वह रती कौन है?

वेनु : जो जन्म-जन्मान्तर से हमें बांधे है!

प्रदुम्न : मैं इस जन्म में तेरा पुत्र था।

वेनु : हर प्रिया मां है।

प्रदुम्न : वेनु!

वेनु : यदू!

प्रदुम्न : हम क्या हैं?

वेनु : हम इसी क्षण के लिए अब तक जीवित थे?

प्रदुम्न : मुझमें संघर्ष था···तुझमें संशय था!

वेनु : हम दोनों में दोनों था···दोउ···दोउ ···दोउ···अब और प्रश्न मत करो मुझसे। अन्तःपुर में, उस पहले दिन जब तुम्हें देखा था, समर्पित हो गयी थी, यद्यपि मैं लज्जित थी। जिस दिन तुम्हारे अंक में सोयी थी, यद्यपि घृणा से भरी थी, फिर भी तुम्हें प्यार किया था। उस दिन मैं क्रोध से पागल थी, जब तूने जरा के सामने मुझे अपमानित किया···पर आज मैं केवल प्रिया हूं···लज्जित नहीं···। यदू···यदू···।

[यह कहती हुई प्रदुम्न के पास आ जाती है। बहुत ही कोमलता से उसे छूती है।]

वेनु : छुओ···छुओ मेरे घाव को। सावधान, कमल पराग में वह मछली सोई है।

[प्रदुम्न की आंखें बन्द हो गयी हैं। वह हाथ उठाकर बोलने लगता है। उसमें वेनुरती का भी स्वर मिल जाता है।]

हे घायल ईश्वर!
हम तुझे समझना चाहते हैं
क्या थी तेरी इच्छा

हमारे माध्यम से ?
क्यों था हमारा प्रेम इतना आश्चर्य-
जनक कठोर
फिर भी इतना कोमल।
और हमारी प्रतीति
इस विनाश के साथ ही क्यों हुई ?
इतने गहरे जल में
हम प्यासे क्यों थे ?
प्यासे थे हम दोउ जल में···
दोउ···दोउ···दोउ
दोउ···दोउ !

[प्रदुम्न के अंक में वेनुरती निश्चेष्ट हो जाती है। वह वेनुरती को अंक में बांधे उठने लगता है पर लड़खड़ाकर गिर जाता है।]

प्रदुम्न : (शून्य में देखता हुआ) कौन है तू ? मुझे इस तरह घूर क्यों रहा है ? नहीं-नहीं, वह बांसुरी मैंने तोड़ी। वह क्या है तेरे हाथों में ? नहीं, अब तू मुझसे भाग नहीं सकता। हे पीताम्बरधारी, मैं तुझे देख-पहचान रहा हूं। राधावल्लभ, कृष्णमुरारी ! मुरलीधर !

[प्रदुम्न सबको निहारता है। सहसा रुक्मिनी के अंक में उस नवजात शिशु को देखता है।]

प्रदुम्न : (बढ़कर) लाओ यह राजमुकुट इसके माथे पर रख दूं।···नहीं, नहीं, इसे इसी वृक्ष पर टांगूंगा ! यह कौन बजा रहा है मधुकुंज में बांसुरी ?

[मुकुट को बड़े कष्ट से वृक्ष पर लटकाता है।]

प्रदुम्न : और यह गांडीव ! इसे यहीं पड़ा रहने दो। कोई शिशु इससे खेलेगा ! (सहसा) यह कौन बजा रहा है वंशी ? यह कौन-सा राग है··· खम्माच या विहाग···मालकोश···या भैरव···?

[कहता हुआ निःशेष हो जाता है। उन दोनों को यदु नारियां घेरकर प्रतिमा की तरह खड़ी रह जाती हैं। फिर उनके मुंह से फूटता है।]

नमः शांताय
घोराय
गूढ़ाय गुणधर्मिणे,
निर्विशेषाय सौम्याय
नमो ज्ञान घनाय च···

रुक्मिनी : सुनो···मैं तुझे इसी शिशु से जीवित रखूंगी। जिस द्वारिका में तुझे जन्मा था, इसे अंक में लिये उसी

नगर में वापस जाऊंगी—द्वारिका की रचना जिसने की थी, उसका भी जन्म इसी तरह हुआ था···!

[उस भूमि की परिक्रमा कर गाती हुई यदु स्त्रियां रुक्मिणी के संग चल पड़ती हैं।]

हिरना रे !
समुझि समुझि बन चरना
एक बन चरना दुसर बन चरना
तिसरे मा पगु नहिं धरना रे
हिरना रे···।

पर्दा

• •